अक्टूबर-दिसम्बर 1994 वर्ष 26 अंक 4

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित

ओडोटिक्स

6 पैरों वाला रोबोट

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका ''वैज्ञानिक' का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है

परिषद की सदस्यता एवं ''वैज्ञानिक'' पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है ।

	परिषद सदस्यता (रुपए में)			**वैज्ञानिक शुल्क** (रुपए में)	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

- ''वैज्ञानिक'' विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा ।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को ''वैज्ञानिक'' निःशुल्क भेजी जाती है ।
- सभी शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम से डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भजें । कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीआर्डर द्वारा शुल्क न भेजें ।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिए गए आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें ।

''वैज्ञानिक'' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में 'वैज्ञानिक'' अग्रणी है । देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं । इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं । पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी x 21 सेमी है ।

विज्ञापन की दरें	: **एक प्रति के लिए**
अंतिम आवरण	: रु. 2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	: रु. 2,000/-
पूरा पृष्ठ	: रु. 1,500/-
आधा पृष्ठ	: रु. 800/-

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1995

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं । लेख में किसी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए । दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) निम्नलिखित पते पर भेजें । चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु. 1500/-, द्वितीय रु. 1000/-, तृतीय रु. 500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिन्दी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो विशेष पुरस्कार - प्रत्येक रु. 300/- के दिये जायेंगे । अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें ।

अंतिम तिथि : 30 सितम्बर 1995 *(कृपया प्रविष्टियां अगस्त-सितम्बर 1995 के दौरान ही भेजें)*

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं ''वैज्ञानिक'' की संपत्ति होगी । ''वैज्ञानिक'' पत्रिका से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे ।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, लेसर एवं प्लाज्मा प्रौद्योगिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, बंबई - 400 085.

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 26 अंक 4

अक्टूबर-दिसम्बर 1994

व्यवस्थापन मंडल

डॉ. अशोक कुमार सूरी
डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा
श्री. घनश्याम दास मित्तल
श्री. इंद्र कुमार शर्मा
श्री. कुलवंत सिंह

संपादन मंडल

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
श्री. हरिओम मित्तल
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय
श्री. रामनाथ जिन्दल

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष	70 रु.	40 रु.

विदेश में

(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	45 रु.	35 रु.
तीन वर्ष	125 रु.	95 रु.

पृष्ठ संख्या

संपादकीय 3

लेख

1. **कैंसर एवं विकिरण** 5
   - डॉ. अवधेश दीक्षित
2. **जैव प्रौद्योगिकी : कृषि में बढ़ता दबदबा** 8
   - विजय कुमार उमराव
3. **कुछ अलौह धातुओं के निष्कर्षण की नयी प्रक्रियाएं** 12
   - डॉ. अशोक कुमार सूरी
4. **झाग की अनोखी दुनियां** 16
   - डॉ. गोविन्द प्रसाद कोठियाल
5. **ओजोन परत का क्षयीकरण: एक पर्यावरणीय समस्या** 24
   - डॉ. गणेश कुमार पाठक
6. **प्रतिरक्षण प्रक्रियाओं का कोशकीय नियमन** 30
   - डॉ. कृष्णा सैनीस
7. **पशु आहार में खनिजों का महत्त्व** 34
   - डॉ. अनिल कुमार शर्मा
8. **क्षयरोग एवं धार्मिक विश्वास** 37
   - स्वामी प्रसाद एवं डॉ. जसवन्त नाग
9. **संघनित पदार्थ अध्ययन में न्यूट्रॉन प्रकीर्णन तकनीक का महत्त्व** 39
   - डॉ. आदित्य प्रसाद रॉय

टिप्पणियां

1. **जीवाणु खाद-कितनी उपयोगी** 43
   - डॉ. सविता गुप्ता
2. **इम्यूनोबायो टैक्नोलोजी के बढ़ते कदम** 45
   - डॉ. आर. एस. सैंगर
3. **स्वचालन एवं रोबोटिकी** 46
   - राम कुमार एवं रमेश कुमार मोदी

● ''वैज्ञानिक'' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

● ''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हि. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित है ।

● ''वैज्ञानिक'' एवं हि.वि.सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा ।

कार्यालय :

''वैज्ञानिक'' हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्प्लैक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई - 400 085

''वैज्ञानिक'' का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण कर लें । यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएं ।

संपादक

बाल विज्ञान

● **क्यों होता है ग्रहण ?** 48

● **क्या अत्यधिक सही लम्बाई ज्ञात करना संभव है ?** 50
- विमलेश चन्द्र

विज्ञान समाचार

● **भा.प.अ. केन्द्र से** 51

● **अन्य समाचार** 52

(i) कंप्यूटर पढ़ सकता है ?
(ii) श्वेत क्रांति के लिए नये प्रयास
(iii) कीड़े ही कीड़ों के शत्रु
(iv) नाभिकीय ऊर्जा के बढ़ते चरण
(v) चिरायु की दिशा में नया विज्ञान शोध

● **संगोष्ठी समाचार** 58

विज्ञान कविता 59

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद वार्षिक प्रतिवेदन (1993-94) 60

संकलन

● पिछले अंकों की अनुक्रमणिका 64

लेख प्रतियोगिता (1994) का परिणाम 70

कुछ फूल कुछ कांटे 71

सदस्यता आवेदन पत्र (प्रारूप)

अध्यक्ष,
हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई - 400 085.

प्रिय महोदय,
मैं, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केन्द्र बम्बई) का आजीवन/साधारण सदस्य बनने का इच्छुक हूं। मेरा निजी विवरण निम्नलिखित है । मैं सदस्यता शुल्क * साथ भेज रहा हूँ । कृपया मुझे परिषद का आजीवन/साधारण सदस्य बनाने का कष्ट करें ।

नाम : _____ आयु : _____
पता-कार्यालय : _____ पता-निवास : _____
_____ _____
व्यवसाय : _____ _____
हिन्दी की पात्रता : _____ प्रवीणता : _____
(Qualification) _____ (Specialisation) _____
विशेष रुचि : _____ हस्ताक्षर : _____
अन्य विवरण : _____ दिनांक : _____

* शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भेजें ।

संपादकीय

विज्ञान एवं विज्ञान समितियां

भारत आज वैज्ञानिक मानव शक्ति के क्रम में संसार में तीसरे स्थान पर आता है परंतु वैज्ञानिक उपलब्धियां उसके अनुरूप नही लगती हैं । क्या हमारे वैज्ञानिक कार्य निष्पादन में सक्षम नही हैं ? क्या उनकी योग्यताएं विकासशील देशों के वैज्ञानिकों की तुलना में कम हैं या उनके लिए सही सामाजिक-आर्थिक एवं वैज्ञानिक वातावरण नही है ? आज जब हम 21 वी. सदी की कगार पर खड़े हैं और अपने पिछले 40-45 वर्षों की प्रगति की ओर देखते हैं तो लगता है कि कहीं कुछ चूक हो रही है । ध्यान रहे कि स्वाधीनता के लगभग दस वर्षों बाद भारत सरकार ने मार्च 1958 में देश की विज्ञान नीति की आधार शिला रखी थी जिसका उद्देश्य राष्ट्र की समृद्धता के लिए विज्ञान एवं तकनीकी को आधारभूत स्थान देने के साथ साथ पुरुष एवं महिलाओं दोनों की सर्जनात्मक प्रतिभाओं को पूर्ण रूप से प्रोत्साहित करना था । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिकों के लिए अच्छी सेवा शर्तें, वातावरण यहां तक कि वैज्ञानिक नीतियों के निर्धारण में उनकी भागीदारी का भी प्रावधान रखा गया था ।

किसी भी कार्यक्रम की सफलता के लिए एक निश्चित कार्य प्रणाली तैयार करना आवश्यक होता है । उसके लक्ष्य पूरी तरह परिभाषित होने चाहिए । सभी कार्य चाहे वे मौलिक शोध, विकास या अनप्रयुक्त शोध से संबंधित हों । मूल लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में ही किये जाने चाहिए । इन कार्यों को सुचारु रूप से कार्यान्वित करने तथा कार्य विभाजन को ध्यान में रखते हुये विभिन्न समितियों का गठन करने की आवश्यकता से नकारा नही जा सकता है । परंतु मात्र समितियों का गठन करना कार्य को पूर्ण नही कर देता है । समितियों की जिम्मेदारी स्पष्ट की जानी चाहिए । उन्हें कार्य करने के स्तर पर आवश्यक अधिकार एवं स्वतंत्रता दी जाय और फिर सफलता एवं विफलता दोनों के लिए बराबर का भागीदार माना जाय । कार्यक्रम अध्यक्ष को पूर्ण जानकारी रहे कि विभिन्न समितियों द्वारा लिये गये निर्णय सही रूप से कार्यान्वित किये जा रहे हैं अथवा नहीं । और इसके साथ उनकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है इन सभी प्रयासों को समग्रता से देखने तथा उचित मार्गदर्शन करने की ।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. नार्लीकर द्वारा हाल में कही यह बात काफी महत्वपूर्ण लगती है कि आज किसी भी वैज्ञानिक कार्यक्रम के लिए कई समितियां बना दी जाती हैं । परंतु उनकी बागडोर कुछ इने गिने लोगों के पास रखी जाती है । क्या ये समितियां अपनी जिम्मेदारियां सही तौर पर निभा पा रही हैं ? क्या समिति द्वारा लिये गये निर्णयों को गंभीरता से लिया जाता है और क्या उनके पास कार्यान्वयन हेतु समुचित अधिकार हैं अथवा नहीं ? ये कुछ प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। कभी कभी यह केवल विफलता की दशा में सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में किसी को भी जिम्मेदार करार न देने का मात्र जरिया बन जाता है ।

इन समितियों के संदर्भ में जैसे ऊपर कहा गया है कि कुछ चन्द वैज्ञानिकों को ही हर समिति में रख लिया जाता हैं, वे अपने कार्यों में पूर्ण रूप से ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते हैं। काफी समय एक जगह से दूसरी जगह की यात्राओं में चला जाता है । आखिर उन वैज्ञानिकों की भी अपनी अपनी सीमाएं हैं । प्रश्न यह है कि इतने विशाल वैज्ञानिक समुदाय, जिनमें कई अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हैं, के बावजूद समितियों का कार्य कुछ लोगों तक ही सीमित क्यों ?

अभी हाल में भा.प.अ. केन्द्र के निदेशक डॉ. प्रसाद ने इस ओर स्पष्ट शब्दों में संकेत दिये हैं कि वैज्ञानिक मानव शक्ति का इष्टतम उपयोग नही हो पा रहा है इसलिए आवश्यक

है कि ऐसी संस्थागत प्रणाली तैयार की जाय ताकि अनुसंधान एवं विकास में लगे वैज्ञानिकों और औद्योगिक इकाइयों में अधिकाधिक पारस्परिक विचारविमर्श के साथ साथ एक मधुर तालमेल भी बैठ सके । प्रश्न किसी को दोषी ठहराने का नही है बल्कि राष्ट्रीय हित को अहम् समझते हुए कार्यक्रमों के दौरान आ रही दिक्कतों को हल करने का है ।

वैज्ञानिक उपलब्धियों में जो अपेक्षित प्रगति नही हो पा रही है उसके लिए एक ओर नीतियों तथा उनके कार्यान्वयन में कुछ कमियां हैं तो दूसरी ओर वैज्ञानिकों में कार्य के प्रति व्याप्त उदासीनता भी है । इसके लिए सक्रिय वैज्ञानिकों तथा नौकरशाही के बीच उपस्थित बड़ा भेद कुछ हद तक जिम्मेदार कहा जा सकता है । किसी भी राष्ट्र की विज्ञान और तकनीकी की प्रगति इस बात से नहीं आंकी जाती है कि उसके प्रबंधन/नौकरशाही का स्वरूप कितना बड़ा है बल्कि उसके शोध कार्यों की गुणवत्ता कैसी है । नौकरशाही की अपनी भूमिका है परंतु जब वह शोध एवं विकास कार्यों की महत्ता को नजर अंदाज करके अपने ही स्वरूप को बढ़ाता चला जाय तो यह सबसे बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण बात बन जाती है । शायद यही कारण है कि आज वैज्ञानिकों की रुचि वैज्ञानिक कार्यों से हटकर प्रशासनिक कार्यों की ओर बढ़ रही है ।

आज के वातावरण में पदों की महत्ता अहम् बन गयी है । वह चाहे किसी विज्ञान समिति में हो या संस्थान में प्रभागाध्यक्ष या निदेशक का हो, काफी आकर्षक होते हैं क्योंकि एक ही योग्यता वाले दो वैज्ञानिकों में से एक, जिसके पास पद है वह दूसरे के मुकाबले वर्तमान प्रणाली में अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है । यह विज्ञान की प्रगति के लिए उचित वातावरण नही रहने देता है । फलस्वरूप वैज्ञानिक समुदाय में भी यह परंपरा चल पड़ी है कि वैज्ञानिक कुछ समय बाद अपने मुख्य शोध कार्य से विमुख होकर इस प्रयास में लग जाता है कि उसे अमुक पद किस प्रकार मिल पाएगा । वह भी चाहता है कि समाज में उसका कुछ अस्तित्व हो, कुछ सम्मान हो ।

यूं तो किसी भी नीति/कार्यक्रम प्रणाली को परखने के लिए कुछ निम्नतम समय तो लगता ही है । परंतु कार्यक्रम की सफलता के लिए इस बात का विश्लेषण अवश्य किया जाना चाहिए कि अमुक संस्थान की वैज्ञानिक ताकत क्या है, वहां क्या क्या कमजोरियां हैं ? कैसे अवसर और चुनौतियां हैं ? यह विश्लेषण इसलिए भी आवश्यक है कि हमें समय पर यह पता चल जाय कि हमारी कार्य प्रणाली में कोई कमी तो नहीं । यहां पर सबसे महत्वपूर्ण बात है गलती का अहसास और उसके पुनरावलोकन के लिए साहस जुटाने की, न कि गलती को चलते देते रहने की । गलती को स्वीकारना कमजोरी नही बल्कि एक प्रबल एवं साहसी व्यक्तित्व का परिचायक है । यह हमारे आने वाले भविष्य के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण चेतावनी एवं चुनौती का कार्य करता है । इस दिशा में वैज्ञानिक समितियां अपनी सही भूमिका निभाकर राष्ट्र निर्माण में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकती हैं ।

* * * * *

प्रस्तुत है वर्ष 1994 का अंतिम (अक्टूबर-दिसम्बर) अंक जिसमें मिश्रित सामग्री दी गयी है । किसी कारणों से इस अंक के प्रकाशन में विलंब हो गया है उसके लिए हमें खेद है। इस अंक में अन्य सामग्री के साथ हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की वार्षिक रिपोर्ट भी दी गयी है जिससे परिषद की बहुमुखी गतिविधियों की झलक मिलती है । ''वैज्ञानिक'' के स्वरूप में यदि कोई कमी रहती है तो उसके लिए मैं पाठको को भी बराबर का भागीदार समझता हूँ क्योंकि आप हमें अपनी प्रतिक्रिया से बंचित रखते हैं । आशा है कि भविष्य में पत्रिका पढ़ने के बाद कुछ समय अपने विचार भेजने में हमें अवश्य देंगे ।

- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

कैंसर एवं विकिरण

डॉ. अवधेश दीक्षित
सह आचार्य
विकिरण चिकित्सा विभाग, जे.के. कैंसर संस्थान
गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक चिकित्सा महा विद्यालय
कानुपर (उ.प्र.)

आधुनिक संदर्भों में अगर यह कहा जाए कि कैंसर और विकिरण का संबंध चोली दामन का है तो इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी । कैंसर पहिचान से लेकर कैंसर उपचार तक किसी न किसी स्थान पर विकिरण की आवश्यकता एक ध्रुव सत्य है । मैंमोग्राफी में विकिरण जहाँ किसी महिला के स्तन को अति प्रारंभिक अवस्था में पहिचानने के लिए आवश्यक है, वहीं गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर को जड़ मूल से समाप्त करने के लिए महत्वपूर्ण संजीवनी है। दो-तीन दशकों पहले कैंसर के शल्योपचार से होने वाले अंग-भंग विकिरण चिकित्सा ने बीते दिनों की बात बना दिया है। मुख के कैंसर का शत-प्रतिशत उपचार, केवल विकिरण चिकित्सा की नवीनतम पद्धतियों से, रोगी का चेहरा बिना विद्रूप बनाए संभव है। प्रारंभिक अवस्था में स्तन कैंसर के लिए स्तन निकालने की आवश्यकता अधिकांश रोगियों में अब नही होती है। विकिरण की उन्नत उपचार पद्धतियों ने स्तन को शल्य चिकित्सा जनित मानसिक पीड़ा से रोगियों को निज़ात दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

भारतीय चिकित्सा परिषद के आँकड़ों के नुसार भारत में इस समय लगभग तीस लाख कैंसर गी हैं और इक्कीसवीं सदी के आगमन तक कैंसर गियों की संख्या पैंतालीस लाख के ऊपर संभावित ।

भारत में सर्वाधिक पाया जाने वाला कैंसर मुख ा कैंसर है। तम्बाकू और पान मसाले का सेवन इसके ाए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। उत्तर प्रदेश कैंसर ग्रुकेशन और प्रिवेंशन सोसाइटी ने पान मसाला स्कृतिं के विस्तार पर अपनी चिन्ता से देश को वगत कराया है। केवल कानपुर में इस समय तीस अधिक पान मसाले के ब्रांड बनते हैं और कुछ र्ता अच्छे कत्थे के मंहगे दामों के कारण 'टैनिन' रंगी हुई बबूल की छाल का प्रयोग कत्थे के रूप करने लगे हैं। इन टैनिन में 'गैम्बियर' नामक कैंसर रक तत्व पाया जाता है। सुपारी और तम्बाकू के मिश्रण से पान मसाला गैम्बियर के साथ और भी जहरीला हो जाता हैं । यही कारण हैं कि पान मसाला सेवन करने वाले युवाओं में मुख कैंसर की पूर्वावस्थाएं 'ल्यूको-प्लेकिम्प' 'इरीथ्रो प्लेकिम्प' और 'सबम्यूक्स फाइब्रोसिस' बहुधा देखने को मिलते हैं।

घरों में मेहमानों की आवभगत के लिए उपलब्ध पान मसाले को बच्चे कच्ची उम्र से फाँकना शुरू कर देते है और धीरे-धीरे यह आदत बन जाती है। हर गाँव और शहर में प्रति दिन पंद्रह से बीस 'पाऊच' पान मसाला खाने वालों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है । यदि समय रहते आवश्यक कदम नहीं उठाए गए तो दो तीन दशकों में मुख्य कैंसर एक महामारी (एपीडेमिक) के रूप में इस देश में दिखायी देगा।

भारत में पाए जाने वाले अन्य प्रमुख कैंसर गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर, फेंफड़े के कैंसर, स्तन कैंसर,

स्वर यंत्र के कैंसर और गिल्टियों के कैंसर हैं ।

विशेषज्ञों की मान्यता है कि भारत में होने वाले एक तिहाई कैंसरों की रोकथाम संभव है बशर्ते हम जागरूक बनें और समय रहते अपनी आदतों में अपेक्षित परिवर्तन ला सकें । जिनमें मुख्य निम्न है:-

1. मुख कैंसर
2. फेफड़ों के कैंसर
3. गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर
4. स्तन कैंसर
5. बड़ी आँत के कैंसर
6. लिंग कैंसर
7. त्वचा कैंसर

मुख कैंसर : पान मसाला और तम्बाकू के सेवन के साथ-साथ नुकीले दाँत, तीखा तथा गर्म भोजन और मुँह की अस्वच्छता भी इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। वस्तुतः मुख की श्लेष्मा का निरंतर अपमान यदि आप नुकसानदेह आदतों द्वारा करेंगे और उसकी सफाई पर समुचित ध्यान नहीं देंगे तो इस कैंसर के पनपने की संभावनाएं बढ़ेगी।

फेफड़ों का कैंसर : धूम्रपान और पर्यावरण का बढ़ता प्रदूषण इसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है । बीड़ी, सिगरेट से दो गुनी अधिक हानिकारक पायी गयी है। उदासीन/मूक धूम्रपान (पैसिव स्मोकिंग) से बचना हर व्यक्ति का संवैधानिक अधिकार होना चाहिए और इससे बचने के लिए सतत रूप से जागरूक रहना समय की आवश्यकता है। मूक धूम्रपान वह है जिसमें व्यक्ति स्वयं तो धूम्रपान नहीं करता पर दूसरे धूम्रपान करते व्यक्ति के धूम्र को ग्रहण करता है।

स्तन कैंसर : शोध कार्यों ने दर्शाया है कि शिशुओं को स्तन पान कराने से और कम चर्बी का भोजन करने से स्तन कैंसर की संभावना कम होती हैं।

बड़ी आंत के कैंसर : भोजन में रेशेयुक्त पदार्थों की मात्रा प्रचुरता में रखने से और 'फास्ट फूड संस्कृति' से दूर रहकर इस कैंसर से बचने में सहायता मिलती हैं।

लिंग कैंसर : लिंग के अग्रभाग पर जमा होने वाले 'स्मेग्मा' को नियमित रूप से साफ रखने से इस कैंसर की संभावना कम होती है। मुसलमान धर्म में प्रचलित 'खतने' की परंपरा स्वच्छता में सहायक हैं ।

त्वचा कैंसर : विषुवत रेखा के पास रहने वाले लोगों को तेज धूप से बचना चाहिए क्योंकि धूप में उपस्थित पराबैंगनी रश्मियाँ कैंसर कारक होती हैं।

कैंसर का त्वरित निदान:

विकिरण ने कैंसर के त्वरित निदान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। एक्स रे,सी.टी. स्कैन और नाभिकीय औषधि (न्यूक्लियर मेडिसिन) के सहयोग से कैंसर को अति प्रारंभिक अवस्था में पकड़ना संभव हो सका है। मैमोग्राफी के द्वारा स्तन में एक सेमी. तक की गाँठ का पता लगाया जा सकता है। कैंसर के त्वरित निदान के लिए जन सामान्य को कैंसर की निम्नलिखित चेतावनी लक्षण मुँह जबानी याद होने चाहिए।

(1) कोई भी घाव जो उपचार से न भर रहा हो
(2) अनियमित रक्त स्राव ।
(3) वक्ष में या कहीं भी किसी गाँठ का होना और बढ़ना ।
(4) आवाज में असामान्य भारीपन।
(5) खाँसी का लगातार बने रहना।
(6) पेशाब की आदतों में परिवर्तन ।
(7) तिल या मस्से में अचानक वृद्धि ।
(8) वजन में असामान्य कमी ।

इन लक्षणों का होना निश्चित रूप से कैंसर का द्योतक नहीं है अपितु इनका होना यह संकेत देता है कि चिकित्सकीय परीक्षण कैंसर का शत प्रतिशत दूर करने के लिए आवश्यक है। महिलाओं द्वारा स्वतः स्तन परीक्षण प्रति माह माहवारी के पहले हफ्ते के बाद स्नान करने के पूर्व करते रहने से स्तन कैंस

ा शीघ्र पकड़ने में सहायता मिलती हैं। गाँठ मिलने
ं चिकित्सक से परामर्श ले सकते हैं।

ंसर का उपचार:

विश्व स्वास्थ संगठन के आँकड़ों के अनुसार
त्तर प्रतिशत कैंसरों के उपचार में विकिरण किसी
किसी स्तर पर अनिवार्य आवश्यकता बन गया
। भारत में पाए जाने वाले सर्वाधिक कैंसर-मुख कैंसर
था भारतीय महिलाओं में पाए जाने वाले सर्वाधिक
र्भाशय ग्रीवा के कैंसर में केवल विकिरण द्वारा पूर्ण
पेण उपचार संभव है। बहुत से अन्य कैंसरों में शल्य
कित्सा के उपरांत विकिरण द्वारा कैंसर के उस हिस्से
ा समाप्त किया जा सकता है जिसका नग्न आँखों
नजर न आने कारण निकाल पाना संभव नहीं होता
कुछ समय बाद यही हिस्सा कैंसर के पुनः पनपने
कारण होता हैं। बहुत से अन्य कैंसरों में जहाँ
ा की बढ़ी अवस्था के कारण न तो शल्य चिकित्सा
भव होती है और रोगी के अत्यधिक कमजोर होने
कारण न ही दुष्प्रभाव मुक्त औषधि चिकित्सा, वहाँ
किरण चिकित्सा के प्रभावी प्रयोग से रोगी के अंतिम
मों को आराम दायक बनाया जा सकता है।

किरण चिकित्सा के प्रकार :

निकटोपचार : इसमें रेडियोधर्मी तत्वों को रोगी
प्रवेश करा कर कैंसर को इस प्रकार नष्ट करते
कि प्रयुक्त समय में रोगी को किसी प्रकार का
ुकसान नहीं होने पाता । प्रमुख रूप से सीजियम
कोबाल्ट की नलिकाओं और सुइयों का इस्तेमाल
विधि में किया जाता है।

दूरोपचार : कोबाल्ट मशीन या त्वरक द्वारा इस
ध में विकिरण कई गुणकों में प्रति दिन थोड़ी मात्रा
कैंसर ग्रस्त हिस्से पर इस्तेमाल किया जाता है।
ीस घंटों के अंतराल पर जब दूसरे गुणक का
ामाल करते हैं, तब तक उस अंग की सामान्य
शकाएं तो विकिरण के दुष्प्रभाव से पूर्णतया उबर
ी है पर कैंसर कोशिकाएं मृत हो जाती हैं ।
लगभग तीस दिन तक दोहराए गए इस उपचार से अंततः कैंसर ग्रस्त अंग विशेष कैंसर मुक्त हो जाता है और सामान्य कोशिकाओं पर लगभग नगण्य से दुष्प्रभाव होते हैं ।

नाभिकीय औषधि : वर्तमान में कण्ठग्रंथी का कैंसर रेडियोसक्रिय आयोडीन मिलाकर किया जाता है।

देश में विकिरण चिकित्सा सुविधाएं:

दुर्भाग्य से विकिरण चिकित्सा सुविधाओं का विकास देश में सम्यक ढंग से नहीं हो पा रहा है। वैज्ञानिक प्रगति में तमाम ढोल पीटे जाने के बीच यह एक कड़वा सच है कि अभी भी हम आयातित मशीनरी के गुलाम हैं। विकिरण चिकित्सा के लिए अत्यावश्यक कोबाल्ट मशीन खरीदने के लिए हम लगभग एक करोड़ पच्चीस लाख रुपए विदेशी कंपनियों को देने को विवश हैं । अभी स्वदेशी कोबाल्ट मशीन का विकास संभव नहीं हो सका है । इस समय पूरे भारत में लगभग एक सौ पचास कोबाल्ट मशीनें हैं जबकि हमारी आवश्यकता लगभग एक हजार मशीनों की है। सरकार का वर्तमान आर्थिक ढाँचा आवश्यकता की पूर्ति के लिए, अन्य प्राथमिकताओं के कारण, नितांत अक्षम है । जब कि कोबाल्ट मशीन विकिरण उपचार के लिए गरीबों की मूलभूत मशीन है । उच्च तकनीकी विकिरण उपचार के लिए कोबाल्ट मशीन के अलावा और भी बहुत से उपकरण अब मूलभूत आवश्यकता के दायरे में आते हैं। भारतीय कैंसर रोगियों को विकिरण चिकित्सा की नवीनतम पद्धतियाँ सर्वसुलभ कराने के लिए राष्ट्रीय पहल और व्यापक दृष्टिकोण की महती आवश्यकता है। इसके अभाव में कैंसर के शीघ्र निदान की सुविधाएं खड़ी करना, पानी के अभाव में प्यासों की भीड़ बढ़ाना की कहा जाएगा। कैंसर से प्रभावी ढंग से लड़ने के लिए विकिरण का वरदान, कैंसर अस्पतालों में उपलब्ध कोबाल्ट मशीनों पर रोगियों की लम्बी प्रतीक्षा सूची के कारण या अधकचरी सुविधाओं के कारण मृगतृष्णा ही बना हुआ है।

जैव प्रौद्योगिकी: कृषि में बढ़ता दबदबा

विजय कुमार उमर
13/147 गायत्री भवन, परम
कानपुर 208 001 (उ.प्र

वनस्पति अनुसंधान और प्रौद्योगिकी, विकास की उस स्थिति में प्रवेश कर गये हैं जहां से असीम संभावनाएं प्रकट हो रही हैं । पादप हारमोन, टिशू कल्चर और जीन इंजिनियरिंग जैव-प्रोद्योगिकी के सशक्त माध्यम हैं जिनके प्रयोग से विशिष्ट चमत्कारी परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं । इन्हीं कुछ सफल प्रयासों की चर्चा प्रस्तुत है इस लेख में ।

अप्रैल 1953 में ''वाटसन एवं क्रिक'' द्वारा डी.एन.ए. मॉडल की खोज के बाद से ही आनुवांशिकी विज्ञान के समानांतर एक नयी विज्ञान शाखा का विकास शुरू हो गया था जो आज अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर है । इस नये विकसित जैविक विज्ञान को आजकल ''बायो-टेक्नालॉजी'' नाम दिया गया है। जब सूक्ष्म जीवों और जैविक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक तरीकों से इस प्रकार उपयोग किया जाये कि मनुष्य को अधिकाधिक लाभ हो तो उस उपयोग को ''जैविक-प्रौद्योगिकी'' कहते हैं । इस जैव-प्रौद्योगिकी का आधार लाभकारी जीनो (वंशाणू) का स्थानांतरण (ट्रांसफर) है । जब किसी ''दाता जीव'' के क्रोमोजोम से किसी निश्चित लाभकारी वंशाणु को निकालकर उसे दूसरे ''ग्राहक जीव'' की कोशिकाओं में प्रतिस्थापित किया जाता है तो ऐसी कार्यप्रणाली को ''जीन इंजिनियरिंग'' कहते हैं । सन् 1970 के बाद इन दोनों शाखाओं ने इतना विकास किया है कि दोनों आज एक दूसरे की पर्याय बन गयी हैं अर्थात एक शाखा का प्रयोग तभी सफल व लाभकारी होगा अब दूसरी शाखा का प्रयोग भी साथ में किया जाये ।

जैव-प्रौद्योगिकी का सबसे अधिक प्रभाव चिकित्सा एवं कृषि विज्ञान में ही दिखायी दे रहा है, जिसके कारण इन दोनों व्यवहारिक विज्ञानों को नया जीवन सा मिला है । वैसे इसने अपने हाथ, युद्ध विज्ञान, जीवाश्म विज्ञान, फिंगर प्रिंटिंग और सैल विज्ञान तक भी फैला लिये हैं । इसकी महत्ता को देखकर ही सरकार ने 1982 में जैव-प्रौद्योगिकी बोर्ड तथा 1986 में जैव प्रौद्योगिकी प्रभाग की स्थापना है । अमेरिका की कोल्ड स्प्रिंग हार्बर लैबोरेटरी ''डी.एन.ए.'' लर्निंग सेंटर बायोटेक्नालॉजी की शि के लिए समर्पित विश्व का एक मात्र आधुनिकत केन्द्र है इसके वर्तमान अध्यक्ष डा. जेम्स वाटसन जिन्हें फ्रान्सिस क्रिक के साथ डी.एन.ए. के ''डबु हैलिक्स'' मॉडल की खोजों के लिए 1962 में नोबे पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है । इस लि सेंटर में 1985 से हाई स्कूल के छात्रों से लेव वृद्धाश्रम के बूढ़ों को भी डी.एन.ए. विलगन तकनी सिखायी जा रही है । भारत में भी अब कई संस्थाः में स्नातक से लेकर डाक्टरेट (पीएच. डी.) तक शिक्षा जैव-प्रौद्योगिकी विषय के अन्तर्गत दी जा र है ।

आज इस वैज्ञानिक और शैक्षिक युग में तमाम कोशिशों के बावजूद विश्व की आबादी पां अरब से ज्यादा हो चली है । हमारे देश की जनसंख भी चीन का पीछा करती हुई 84 करोड़ से ऊ पहुंच चुकी है । लेकिन लोगों का पेट भरने वा ''अन्न'' का उत्पादन उतनी तेजी से नहीं बढ़ र है। कृषि वैज्ञानिकों के लिए यह एक चुनौती है वे ऐसी किस्मों का विकास करें जो इतनी भरपूर पैदा दें की भविष्य में कभी भी ''सोमालिया'' जैसी स्थि (भुखमरी) का सामना न करना पड़े । जैव-तकनी आज इस कठिन चुनौती का सामना करने के लि एक सक्षम माध्यम बन सकता है ।

नई किस्मों का विकास - आधुनिक कृषि त

लों की नयी-नयी किस्मों के विकास में ा-प्रौद्योगिकी का अपना अलग ही महत्व है । टिश्यू चर, एंब्रियो कल्चर, पालेज कल्चर आदि पौध र्धन (प्रौपेगेशन) विधियों का आधार जैव प्रौद्योगिकी है । कृषि वैज्ञानिकों ने ऐसी प्रजातियां विकसित हैं जिनमें हानिकारक गुणों की अपेक्षा लाभकारी ों की भरमार है । अब ऐसी किस्मों का विकास ा जा रहा है जिन पर कवकनाशी एवं कीटनाशी ायनों के अवशेषों (रेजीडुअल) का प्रभाव न पड़े फिर वह किस्म ऐसे गुणों वाली हो कि उस पर क विशेष बीमारी या कीड़े का प्रकोप ही न हो। के लिए उन पौधों या जीवाणुओं के शरीर से, किसी विशेष कीट या बीमारी के लिए प्रतिरोधी सम्बन्धित जीन विलगित करके अन्य उपयोगी पौधों स्थानांतरित कर नयी किस्मों का प्रादुर्भाव किया ा है ।

कपास के पौद्यों को नाशक जीवों से बचाने लिए कीटमार जीन को कपास में रोपित किया ा है । आलू, टमाटर, तम्बाकू आदि की ऐसी तियाँ विकसित की गयी हैं जो कुछ विशेष नाशियां जैसे ''फास्फीनाथ्रिसिन'' के प्रति प्रतिरोधी अमेरिकी वैज्ञानिकों ने टमाटर की एक ऐसी किस्म सित की है जिसमें घुलनशील ठोस पदार्थ एस.एस.) 20 प्रतिशत से अधिक है वहीं ोफोर्निया के वैज्ञानिकों ने टमाटर की ऐसी प्रजाति सित करने में सफलता पायी है जो धीरे-धीरे पक लंबे समय तक ताजे फल उपलब्ध कराती हैं। गुण टमाटर को पकाने के लिए उत्तरदायी एन्जाइम लीगैलैक्टुरोनेज'' के ज्यादा उत्पादन को अवरुद्ध क विकसित किया गया है वैज्ञानिकों ने आलू और टर के मेल से ''पोमैटो'' नामक प्रजाति विकसित है । इसी प्रकार तम्बाकू और सेम के मेल से बीन'' तथा मूली और पत्तागोभी (ब्रोसिका ओलेरेसी) ल से ''रफेनो-ब्रैसिका'' का विकास रूसी वैज्ञानिक डी. कारपीचेंकीं (1928) ने किया है । लेकिन ाभी अभी प्रयोगशाला तक ही सीमित हैं ।

गोभी चकत्ता जीन प्रमोटर द्वारा टमाटर और तम्बाकू के पौद्यों को टोबैको मोजेक वाइरस जीन को अभिलक्षित किया गया है जो उसे अन्य चकत्ता रोग-जनकों के प्रति सुरक्षित रखते हैं । क्वींसलैण्ड के वैज्ञानिको ने वांछित जीन प्रतिस्थान (ट्रांसजैनिक) विधि अपनाकर गन्ने की एक ऐसी किस्म विकसित की है जो जीवाणु, विषाणु, कवकों से होने वाले ज्यादातर रोगों के लिए प्रतिरोधी है । राष्ट्रीय रासायनिक अनुसंधानशाला पुणे के वैज्ञानिकों, रजनी नादगोड़ा, वर्षा पाराश्रयी व टॉनी मेसकेरेहन्स ने परखनली में बांस (बम्बूसा स्प.) की ऐसी प्रजाति विकसित की है जो 2-3 माह में ही फूलकर बीज उत्पन्न करने में सक्षम है, जबकि साधारणतः बाँस 60 से 100 वर्षों बाद ही फूलना प्रारम्भ करता है । कैलीफोर्निया में बागवानी के प्रोफेसर हॉन डुरजान ने भी दुर्लभ जंगली पौधों व वृक्षों को प्रयोगशाला में उगाया है । इन कृत्रिम परिस्थितियों में उन पौधों के बीज पैदा करके ऐसे पौधों का संरक्षण किया जा सकता है जो इस धरती से लुप्त होते जा रहे हैं ।

बेसिलस थुरेन्जेन्सिस नामक बैक्टीरिया की चर्चा आजकल बहुत होती है । यह एक ऐसा जीवाणु हैं जो एक विशेष प्रोटीन उत्पन्न कर पौधों पर बीमारी फैलानेवाले फंफूद व कीटों को नष्ट करने की क्षमता रखता है । उसकी इस क्षमता (जीन) को फसली पौधों में भी प्रतिस्थापित किया जा रहा हैं । तम्बाकू टमाटर के पौधों तथा मक्का की जड़ों में सहकारी रूप में रहने वाले जीवाणू ''क्लेविबैक्टर जाइली'' में ऐसे जीन का प्रतिस्थापन किया जा चुका है जो इनकी परजीवियों से रक्षा करता है। ऐसे वंशाणु के निर्माण में भी सफलता मिली है जो पौधों को पाले के प्रभाव से दूर रखेगा । ''वूली एफिड'' कीट के लिए प्रतिरोधी सेब की किस्में तथा ''फिल्लोक्जोरा'' नामक स्टलॉज के लिए प्रतिरोधी अंगूर के लिए प्रकन्द विकसिक किये गये हैं ।

फलों को पकाने के लिए ''एथिलीन'' हारमोन उत्तरदायी है । टमाटर में ऐसे जीन का रोपण किया

गया है जो ज्यादा मात्रा में एथिलीन का उत्पादन (सुश्लेषण) करता है जिससे टमाटर के फल ज्यादा व एक समान पकते हैं । दुनिया में सर्वाधिक विटामिन सी देनेवाला पौधा ''बारबाडोस चेरी'' है लेकिन आमतौर पर इसे पाने के लिए प्रयोग नहीं किया जाता। यदि इसके इस गुण के लिए उत्तरदायी जीन को आम, अमरूद, नींबू, टमाटर आदि में प्रतिस्थापित किया जा सके तो हमें 'स्कर्वी' जैसे रोग विटामिन-सी की कमी से कभी नहीं होंगे । वैज्ञानिकों ने ऐसे जीन संयोजित किये हैं जो आलू को प्रोटीन से भरपूर बना देंगे । रेप सीड में पालक एसिल प्रोटीन जीन को क्लोनित किया गया है जिससे सोयाबीन जैसा तेल उत्पन्न होता है ।

पशुधन विकास - आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिक जार्ज रोजर्स ने ''साल्मोनेला टाइफी मुरियम'' नामक जीवाणु से ऐसे एन्जाइम की खोज की है जो भेड़ में भी पाया जाता हैं और ऊन उत्पादन के लिए उत्तरदायी है । उन्होंने उस गुण वाले जीन को भेड़ की कोशिकाओं में प्रविष्ट कराकर अधिक ऊन उत्पादन की ओर कदम बढ़ाया है । ''एशेरिकिया कोलाई'' नामक बैक्टीरिया में भी ऐसे ही एन्जाइन उत्पन्न करने वाले गुण देखे गये हैं । आनुवांशिक विशेषज्ञों ने सुअर की एक ऐसी प्रजाति विकसित की है जो मानव के लिए हीमोग्लोबिन का निर्माण करेगी जिसका उपयोग रक्त प्रत्यारोपण में सफलतापूर्वक किया जा सकता है ।

भारत गाय, भैंसों की संख्या के मामलें में दुनिया में जितना आगे (प्रथम) है, दुग्ध उत्पादन में उतना ही पीछे । विदेशी नस्लें जहां एक बियात में 4000 से 5000 लीटर दूध प्रदान करती है, वहीं हमारे देश की गायें मात्र 1500 से 1800 लीटर ही दे पाती हैं । जैव-प्रौद्योगिकी ने पशुधन नस्ल सुधार के बारे में विशिष्ट संभावनायें उत्पन्न की हैं । भ्रूण-प्रतिस्थापन तकनीक द्वारा तीव्रगति से सर्वोत्तम कोटि के पशुधन की प्राप्ति और बहुमूल्य जर्मप्लाज्म के संरक्षण में सहायता मिली हैं । आनुवंशिक इकाई (जीन) के संरक्षण के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में देश के प्रथम जीन बैंक की स्थाप की गयी है । यहीं के वैज्ञानिकों नें 1987 में परखनर तकनीक द्वारा एक बछिया (नाम-लोहड़ी) का विका कर ''वांछित प्रजाति विकास क्रांति'' का श्रीगणे कर दिया है । ''सुपरओवुलेशन'' द्वारा प्राप्त भ्रू को प्रतिरोपित कर एक मादा से वर्ष में 15-20 बच प्राप्त किये जा सकते हैं । इस विधि से भ्रूण संग्र करने से मादा की प्रजनन क्षमता पर कोई प्रतिकू प्रभाव नहीं पड़ता और जहाँ एक मादा सामान्यत वर्ष में एक बच्चा देती हैं, उसी मादा से 4-6 बच आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार कृत्रि गर्भाधान एवं भ्रूण प्रतिरोपण की संयुक्त तकनी उपयोग, पशुधन संवर्धन एवं सुधार में महत्वपू भूमिका निभा सकते हैं ।

जैव उर्वरक - सभी दलहनी फसलों (लेग्यूम्स में वायु मण्डल की खुली नाइट्रोजन को अपनी जड़ के माध्यम से ''उर्वरक'' के रूप में सदुपयोग कर की अद्वितीय क्षमता पायी जाती है, जो अन्य अदलहन (नॉन-लेग्यूम्स) फसलों में देखने को नहीं मिलती लेन्यूम पौधों की जड़ों में पायी जाने वाली गांठ (नोड्यूल्स) में एजोटोबैक्टर जैसे जीवाणु निवास कर हैं जिनमें वायु मण्डलीय नत्रजन के अवशेष की क्षमत पायी जाती है । अपने रहने के एवज में ये पौध को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं । इस प्रकार सहजीव बिताकर दोनों स्वस्थ व सुखी रहते हैं । अब वैज्ञानिक उन पौधों की जड़ों में पाये जाने वाले जीवाणुओं में भी यही गुण विकसित करने की कोशिश कर रहे है, जिनमें 'नोड्यूल्स' नहीं पायी जाती हैं । अब यदि इस कार्य में सफलता मिली तो रासायनिक उर्वरक संयंत्रों को आघात लगेगा क्योंकि तब पौधे स्वयं जैविक उर्वरक की फैक्ट्री बनकर अपने पोषक तत्व खुद उत्पन्न कर लेंगे । यह कार्य ''राइजोबियम जीवाणु'' जो नत्रजन ग्रहण करने की भूमिका निभाने वाले ''जीन'' को निकालकर खाद्यान्न पौधों की जड़ों में पायी जाने वाली जीवाणु कोशिकाओं में प्रतिस्थापित करके किया जा रहा है ।

आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों ने गेहूं की एक ऐसी किस्म् विकसित की है जो वायु मण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है । धान की जड़ों में राइजोबियम एजोटोबैक्टर और नाइट्रोजन स्थिरी कारक जीन युक्त अन्य जीवाणुओं पर कार्य किया जा रहा हैं ताकि धान की जड़ें वातावरण से सीधे नत्रजन का उपयोग कर सकें । पौधों की कोशिकाओं में ''नीलहरित प्रकाश-संश्लेषी जीवाणु'' (साइनो बैक्टोरिया) के प्रवेश हेतु नाइट्रोजन बन्धनकारी जीनों को डालकर जैव उर्वरकों से अधिक लाभ लिया जा सकता है । अब ऐसी किस्मों के विकास पर कार्य चल रह है जो रोगों और अन्य विषमताओं का सामना करने के साथ-साथ अपने लिए आवश्यक पोषक तत्व भी स्वयं बना सकें।

कृषि आधारित उद्योग - अलेक्जेण्डर फ्लैमिंग ने 1929 में सर्वप्रथम ''पेनिसिलियम'' नामक कवक से पेनिसिलीन प्राप्त की थी जो बैक्टीरिया जनित रोगों के लिए राम बाण सिद्ध हुई है । आज जैव तकनीकी अपनाकर पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेट्रासाइक्लिन जैसी अनेकों एण्टीबॉयोटिक औषधियों का उत्पादन व्यवसायिक स्तर पर हो रहा है । यीस्ट, कवक, एलगी, बैक्टीरिया आदि सूक्ष्म जीवों से मनुष्य के भोजन के लिए प्रोटीन का सम्वर्धन बड़ी मात्रा में किया जा रहा है । बेकरी उद्योग का आधार यीस्ट नामक कवक है । डबलरोटी के लिए अधिक मात्रा में किण्व (यीस्ट) उपलब्ध कराने के लिए इसका व्यवायिक स्तर पर उत्पादन किया जा रहा है। इसका एल्कोहल, सिरका, साइट्रिक एसिड, ब्यूटेनाल आदि के उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है । रोधोटुरूला ग्राइसिलीस कवक की मदद से कृषि, उपजातों भूसा, धान का पुआल, आदि से तेल, प्राप्त किया जा रहा है जो साबुन, ग्लिसरीन आदि के बनाने में उपयोग किया जा सकता है।

अग्न्याशय की इन्सुलिन उत्पन्न करने वाली कोशिकाओं से इसके लिए उत्तरदायी जीन निकालकर एशेरिकिया कोलाई नामक जीवाणु के क्रोमोसोम में प्रवेशित कर अधिक मात्रा में इन्सुलिन उत्पादन किया जा रहा हैं जिससे मधुमेह (डायबेटीज) के रोगियों को राहत मिली है । करेला (मोमर्डिका कैरान्टिया) में भी इन्सुलिन की मात्रा पायी जाती है । इसके जीन को अन्य कुकरबिटसी कुल की सब्जियों में रोपित करके उनमें भी यह गुण पैदा किया जा सकता है । ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने शर्करा (सुक्रोण) से पाँच हजार गुना मीठा ''थामैटिन'' नाम प्रोटीन विकसित किया है । इस थोमेटिन जीन को थोमेटोकोकस डेनिएली से विलागित करके यीस्ट में क्लोनित कर थोमेटिन वाणिज्यिक स्तर पर उत्पन्न किया जा रहा है । इसी जीन को गन्ना, चुकन्दर में प्रत्यारोपित करने की कोशिश चल रही हैं । यदि ऐसा सम्भव हो सका तो दुनिया की सबसे मीठी वस्तु हमें गन्ना व चुकन्दर से ही मिल जायेगी।

चाहे मानव शरीर क्रियायें हों या पादप शरीर क्रियायें सभी में एन्जाइम और हारमोन का अपना अलग अलग महत्व है। यह दोनों रासायनिक पदार्थ मुख्यतः शरीर के अन्दर ही उत्पन्न होते हैं । इनकी कमी व अनुपस्थिति होने पर जीवों का विकास अवरुद्ध हो जाता है । लेकिन अब इण्डोल असिटिक एसिड, जिबरेलिक एसिड, एब्सिसिक एसिड आदि पादप हारमोनों का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर किया जा रहा है । ये हारमोन्स वनस्पतिक पौध प्रवर्धन करते समय उनमें जल्दी से जड़ें निकालने में सहायक होते हैं जैसे आई.बी.ए., एन.ए.ए., जीए-3 आदि । फूलों और फलों को सड़ने से रोकने में बहुत महत्वपूर्ण है जैसे आई.ए.ए., जीए-3, 2.4 डी. आदि । यदि इनकी थोड़ी मात्रा पौधों में फूल आने के दो माह बाद छिड़काव कर दिया जाये तो फूल और फल ज्यादा मात्रा में आते हैं । जिबरेलिक एसिड की सहायता से अंगूर की बीज रहित किस्म ''थॉम्पसन सीडलेस'' विकसित की गयी है ।

इन सब सफल प्रयोगों को देखते हुए वैज्ञानिक भविष्य में ऐसा पौधा विकसित करने की सोच सकते हैं जो मानव को सभी पोषक तत्व दे सके और अपनी अथाह पैदावार से समस्त मानव समुदाय का पेट भर सके ।

कुछ अलौह धातुओं के निष्कर्षण की नयी प्रक्रियाएं ☆

डॉ. अशोक कुमार सूरी
धातुकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई 400 085

मानव जाति के विकास में पदार्थ विज्ञान का एक महत्वपूर्ण योगदान है । आज साधारण एवं उच्च तकनीक के उपयोगों में विभिन्न प्रकार के विशिष्ट धातुओं की माँग बढ़ती जा रही है । इस माँग को पूरा करने के लिए तथा पर्यावरण को दूषित होने से बचाने अथवा कम से कम दूषित होने देने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्राकृतिक स्रोतों का उचित उपयोग किया जाये । धातुओं की खपत के साथ-साथ उपलब्ध स्रोतों में खनिजों की सांद्रता कम होती जाती है और एक ही धातु के खनिजों की उपलब्धता भी कम होती जाती है जिससे यह आवश्यक हो जाता है कि हम निम्न सांद्रता वाले खनिजों तथा बहुधात्विक क्लिष्ट खनिजों का उपयोग धातु निष्कर्षण में करें । इसके अतिरिक्त औद्योगिक मल (स्लेज) एवं स्क्रैप भी धातुओं के उत्पादन में काम में लाये जा सकते हैं । इन सब स्रोतों से धातुओं को प्राप्त करने के लिए सामान्य तौर से उपयोग में लाई जाने वाली प्रक्रियाओं का उपयोग यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । अतः निम्न सांद्रता एवं क्लिष्ट खनिजों तथा औद्योगिक स्क्रैप से धातुओं को प्राप्त करने के लिए नयी प्रक्रियाओं का विकास आवश्यक है। इस लेख में कुछ अलौह (नान-फेरस) धातुओं- टिन, मॉलिब्डेनम, नायोबियम, निकल-कोबाल्ट के निष्कर्षण के लिए नयी प्रक्रियाओं के विकास के बारे में जानकारी दी गयी है ।

टिन : भारत में टिन के स्रोत बहुत सीमित मात्रा में मध्यप्रदेश, उड़ीसा तथा हरियाणा में उपलब्ध हैं लेकिन टिन खनिजों का उत्पादन सिर्फ मध्यप्रदेश-उड़ीसा में ही हो रहा है और वह भी बहुत थोड़ी मात्रा में वहाँ के स्थानीय आदि वासियों द्वारा । वहाँ प्राप्त होने वाली खनिज सांद्र के टिन के साथ-साथ नायोबियम और टेन्टेलम भी पाये जाते हैं । टिन खनिजों में अयस्क की मात्रा 1 % से लेकर करीब

परिचय

डॉ. सूरी ने 1970 मे राजस्थान विश्व विद्यालय से धातुकी अभियन्ता की उपाधि प्राप्त की तत्पश्चात् भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में धातुकी प्रभाग में निष्कर्षण धातुकी के क्षेत्र में विशेष शोधकार्य किये ।

उनका शोधकार्य उच्चतापसह धातुओं जैसे कि मॉलिब्डेनम, टंगस्टन, नायोबियम, टेन्टेलम, वेनेडियम, सामान्य तौर से उपयोग में लाये जाने वाले धातु टिन एवं निकल आदि पर आधारित है । उन्होंने विभिन्न तकनीकों और धात्विक स्रोतों से धातु प्राप्त करने की विधियों पर कार्य किया है और उनके शोध कार्य पर आधारित रायपुर में एक 100 टन प्रति वर्ष का टिन संयंत्र काम कर रहा है।

इन शोध कार्यों पर उन्हें बम्बई विश्वविद्यालय तथा लॉस एन्जेलस स्थित कैलिफोर्निया विश्व विद्यालय से स्नातकोत्तर एवं बम्बई विश्व विद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधियां दी गयी। आप आजकल धातुकी प्रभाग में रासायनिक धातुकी अनुभाग के अध्यक्ष हैं । ''वैज्ञानिक'' के व्यवस्थापन का कार्य भी आजकल आपने कंधों पर हैं। आपको राष्ट्रीय धातुकी दिवस समारोह (14 नवम्बर) पर लौह मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय धातुकी पुरस्कार से सम्मानित किया गया । धातुकी के क्षेत्र में यह पुरस्कार एक विशेष महत्त्व रखता है ।

☆ *भारत सरकार के लौह मंत्रालय द्वारा वर्ष 1994 के पुरस्कृत कार्य पर आधारित*

25% तक होती है। सामान्यतया टिन खनिज को कार्बन द्वारा अपचयित कर टिन बनाया जाता है और इस प्रक्रिया में नायोबियम-टेन्टेलम टिन स्लैग में शामिल हो जाते हैं । यही प्रक्रिया जब 5% से अधिक नायोबियम-टेन्टेलम युक्त भारतीय सांद्र पर अपनाई जाती है तो टिन निष्कर्षण बहुत कठिन हो जाती है क्योंकि नायोबियम-टेन्टेलम की मात्रा अधिक होने से टेन स्लैग का गलनांक बहुत बढ़ जाता और इसे कम करने के लिए अधिक फ्लक्स की मात्रा की जरूरत होती है जिससे टिन की काफी हानि होती है और स्लैग में नायोबियम-टेन्टेलम की सांद्रता टिन खनिज में इनकी सांद्रता से भी कम हो जाती है । इस सबको ध्यान में रखते हुए भारतीय सांद्र के लिए दो नयी प्रक्रियाओं का विकास किया गया ।

एक प्रक्रिया में टिन खनिज सांद्र को कास्टिक सोड़ा के साथ गलाया जाता है जिससे टिन एक घुलनशील पदार्थ में परिवर्तित हो जाता हैं और नायोबियम-टेन्टेलम के ऐसे यौगिक बनते हैं जो कि अघुलनशील अवस्था में रहते हैं । टिन के घोल से टेन अयस्क को अवक्षेपित करते है और फिर टिन अयस्क के अपचयन से टिन को प्राप्त किया जाता है । बचे हुए अवक्षेप की हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से क्रिया कराई जाती है जिससे कि कुछ अपद्रव्य एवं सोडियम घुल जाते हैं परन्तु नायोबियम-टेन्टेलन अयस्क बचे रहते है । इन अयस्कों को हाइड्रोफ्लोरिक और गंधक के अम्ल में घोला जाता है और फिर वेलायक निष्कर्षण विधि द्वारा नायोबियम और टेन्टेलम का पृथक्कीकरण किया जाता है । दूसरी प्रक्रिया में पहले टिन खनिज सांद्र को कार्बन से लगभग 950°C पर रोटरी भट्टी में अपचयित और फिर इस सब को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से निक्षारित किया जाता है जिससे टेन अम्ल के घोल में घुल जाता है और नायोबियम-टेन्टेलम बचे रहते हैं । इस प्रकार टिन और नायोबियम-टेन्टेलम का पृथक्कीकरण हो जाता है । टिन के घोल से टिन अयस्क को अवक्षेपित करने के बाद अयस्क के अपचयन से टिन प्राप्त किया जाता है । इन दोनों प्रक्रियाओं को तथा 5% से कम नायोबियम-टेन्टेलम युक्त टिन सांद्र के सीधे अपचयन को टिन पायलेट संयंत्र में अपनाया गया है । यह सब प्रक्रियाएं चित्र-1 में दिखाई गयी हैं । अब एक 100 टन प्रति वर्ष क्षमता वाला व्यावसायिक संयंत्र रायपुर में टिन उत्पादन कर रहा है, इसमें दो प्रक्रियाएं काम मे लायी जा रही हैं । एक तो सीधा अपचयन जो कि 5% से कम नायोबियम-टेन्टेलम अयस्क युक्त सांद्र के लिए उचित है और दूसरी क्षार भाजन जो कि 5% से अधिक वाली सांद्र के लिए उचित है।

मॉलिब्डेनम :- मॉलिनब्डेनम एक सल्फाईड खनिज के रूप में मिलता है, सबसे पहले सल्फाईड को अयस्क के रूप में बदला जाता है । आमतौर से मॉलिब्डेनम, मॉलिब्डेनम अयस्क के हाइड्रोजन अपचयन द्वारा प्राप्त किया जाता है लेकिन इसके विकल्प में कई नयी प्रक्रियाओं के विकास की ओर ध्यान दिया जा रहा है। एक नयी विधि का जिसमें मॉलिब्डेनम कार्बाइड, सल्फाइड एवं अयस्क से पिछले लवण से विद्युतीय निष्कर्षण द्वारा सीधा मॉलिब्डेनम प्राप्त किया गया है । इसके अतिरिक्त निम्न सांद्रता वाले मॉलिब्डेनम सल्फाईड खनिज से मॉलिब्डेनम निष्कर्षण की नयी प्रक्रिया का भी विकास किया गया है । इस प्रक्रिया में मॉलिब्डेनम सांद्र को हाइपोक्लोराइट से निक्षारित किया जाता है और इस हाइपोक्लोराइट को एक विद्युतीय सेल में तैयार किया जाता है । इस प्रकार मॉलिब्डेनम एक मॉलिब्डेट यौगिक के रूप में तथा गंधक एक सल्फेट के रूप के घुल जाते हैं, जिससे गंधक का पर्यावरण पर सल्फरडाइ-ऑक्साइड गैस के रूप में दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ता। मॉलिब्डेट के घोल से मॉलिब्डेनम को कैल्शियम मॉलिनब्डेनम, कैल्शियम मॉलिन्डेट अथवा अयस्क के रूप में अवक्षेपित करते है यह दोनों ही यौगिक मॉलिब्डेनम के बनाने में काम मे लाये जाते है लेकिन फिर भी मॉलिब्डेनम अयस्क से हाइड्रोजन अपचयन द्वारा मॉलिब्डेनम प्राप्त से की विधि ही ज्यादा तक प्रयोग में लायी जाती है । इस पूरी प्रक्रिया का उपयोग

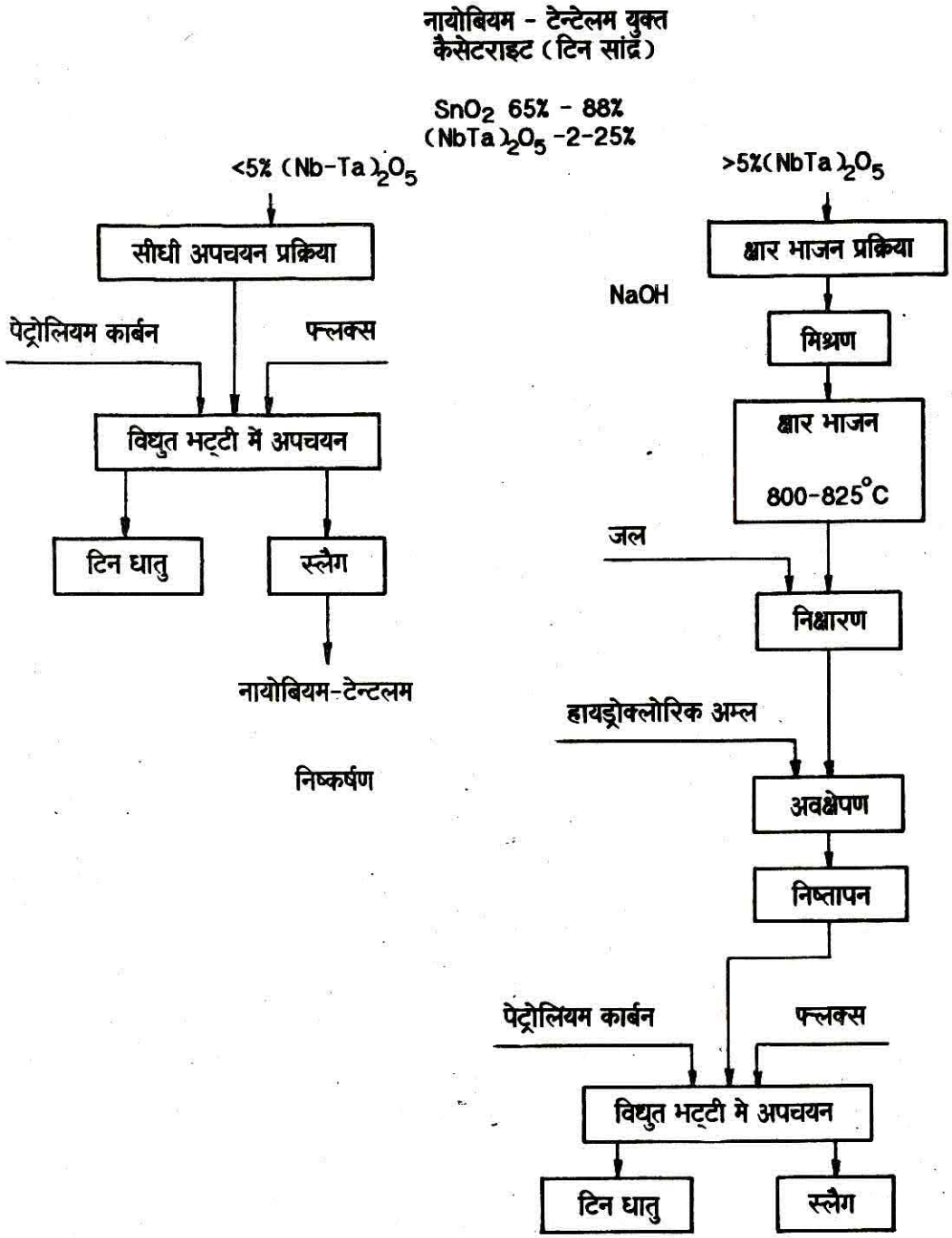

चित्र 1 भारतीय कैसेटराइट खनिज से टिन की निष्कर्षण प्रक्रियाएँ

ाब एक पायलेट संयंत्र में हैदराबाद में किया जा हा है।

ायोबियम :- प्राकृतिक रूप से नायोबियम ाइरोक्लोर और कोलम्बाइट-टेन्टेलाईट खनिजों में ाया जाता है। पाइरोक्लोर से सबसे पहले ाल्युमिनियम अपचयन द्वारा फैरोनायोबियम बनाया ाता है और यह मिश्रातु अपने आप में एक बहुत ा उपयोगी पदार्थ है लेकिन इसका उपयोग शुद्ध ायोबियम बनाने के लिए भी होता है । फैरो नायोबियम क्लोरिकरण द्वारा नायोबियम क्लोराइड बनाया जाता । फिर नायोबियम क्लोराइड का अन्य क्लोराइडों पृथक्कीकरण किया जाता है । तत्पश्चात नायोबियम ायस्क बनाया जाता है । कोलम्बाइट-टेन्टेलाइट स्रोत कई उपचरणों के बाद नायोबियम अयस्क प्राप्त या जाता है । इस अयस्क से ही फिर नायोबियम तु को नष्कर्षित किया जाता है । इस प्रकार फैरो योबियम, नायोबियम धातु प्राप्त करने का एक मुख्य ात है । इससे नायोबियम के निष्कर्षण के लिए क नयी प्रक्रिया का विकास किया गया है । इस क्रिया में नायोबियम एवं इसके यौगिक नाइट्राइड के शिष्ट गुणों का प्रयोग किया गया है। सबसे पहले रो नायोबियम को अमोनिया के वातारण में गर्म करके इट्राइड बनाया जाता है फिर आयरन नाइट्राइड को योबियम नाइट्राइड से अम्ल निक्षारण द्वारा पृथक या जाता है, इसमें आयरन नाइट्राइड घुल जाता और नायोबियम नाइट्राइड शेष रह जाता है । योबियम नाइट्राइड को निर्वात में उच्च ताप पर गर्म ने से उसका भाजन हो जाता है जिससे नाइट्रोजन कल जाती है और नायोबियम शेष बना रहता है। को फिर इलेक्ट्रॉन पुंज द्रवीकरण द्वारा शुद्ध किया ता है । इस नयी प्रक्रिया से सामान्यतया प्रयोग आने वाली क्लोरिनीकरण प्रक्रिया के बनिस्पत कई भ हैं जैसे कीं इसमें कम अपचरण होते है और रण की समस्या भी कम है ।

कल-कोबाल्ट :- हमारे देश में निकल एवं बाल्ट के स्रोत बहुत सीमित है और इनकी खपत लगभग आयात से ही पूरी की जाती है इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम इन धातुओं के अन्य स्रोतों से अधिक से अधिक मात्रा में इनको प्राप्त करें।

अलनिको चुंबकीय धातु के स्क्रैप, इन धातुओं के मुख्य स्रोत बन सकते है क्योंकि उसमें इन दोनों धातुओं की मात्रा लगभग 10-10% होती है। लेकिन इस स्रोत से निकल कोबाल्ट निष्कर्षण की मुख्य समस्या यह है कि अन्य अपद्रव्य भी साथ में शामिल हो जाते हैं जिनका बाद में पृथक्कीकरण बहुत कठिन है । इस सबके लिए कई प्रक्रियाओं का परीक्षण किया गया लेकिन प्रत्येक प्रक्रिया में कुछ न कुछ दोष पाया गया । अंत में एक ऐसी प्रक्रिया का विकास किया गया है जो कि सभी प्रकार से उपयोगी सिद्ध हुई।

इस प्रक्रिया में स्क्रैप को क्यूपरिक क्लोराइड ($CuCl_2$) के घोल में निक्षारित किया गया, निक्षारण के दौरान आक्सीजन का प्रवाह भी घोल में जारी रखा गया । इससे निकल-कोबाल्ट आयरन इत्यादि घुल गये लेकिन बाद में आयरन हाइड्राक्साइड अथवा अयस्क के रूप में अवक्षेपित हो गया जिससे घोल में आयरन की सांद्रता बहुत कम रहती है और यह घोल विलायक निष्कर्षण द्वारा शुरू किया जा सकता है जिससे निकल और कोबाल्ट पृथक-पृथक प्राप्त किये जा सकते हैं । इस प्रक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि घोल से बने अवशिष्ट को पृथक करने के बाद हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से क्रिया करने पर क्यूपरिक क्लोराइड फिर से प्राप्त हो जाता है जो कि प्रक्रिया में फिर से प्रयोग में लाया जाता हैं । इस प्रकार पूरी प्रक्रिया में जो रसायन काम में आते है वह है आक्सीजन और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल ।

इस लेख में जिन अलौह धातुओं के भारतीय स्रोतों से धातुओं के निष्कर्षण की नई प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी दी गई है, उनमें से टिन के लिए व्यावसायिक तौर पर और मॉलिब्डेनम के लिए पायलेट संयंत्र काम कर रहे हैं । निकल-कोबाल्ट के निष्कर्षण

(शेष पृष्ठ 23 पर)

झाग की अनोखी दुनियां

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप इंजीनियरी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बंबई-400 085.

यूं तो झाग बहुत ही साधारण वस्तु लगती है परंतु इसमें छुपा समिश्र विज्ञान तथा इसकी कई अद्भुत क्षमताएँ इसे महत्वपूर्ण पदार्थ की संज्ञा देते हैं। झाग के बुलबुलों की आकृति, समय के साथ आकार एवं आकृति में होने वाले परिवर्तन तो अपने आप में निराले हैं ही, लेकिन इसकी सतही सक्रियता, विशाल सतह क्षेत्र, क्षण भंगुरता के गुण, विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में असीमित अनुप्रयोगों के द्वार खोले हुए हैं । झाग क्या है, कैसे बनता है और बनाया जा सकता है, इसकी संरचना क्या है, क्या यह स्थिर होता है, इसकी क्या क्या उपयोगिताएं है, इत्यादि पहलुओं को ध्यान में रखते हुए यह लेख लिखा गया है।

आमतौर पर हम देखतें हैं कि जब एक कांच के गिलास में कोकाकोला, बीयर अथवा अन्य ठन्डा पेय द्रव डाला जाता है तो शुरु में उसमें द्रव कम और झाग अधिक रहता है। परंतु धीरे-धीरे झाग कम होता जाता है और द्रव का तल उठने लगता है (चित्र-1)। साथ ही झाग में जो बुलबुले बचे रहते हैं वे इस दौरान साम्य बलों में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार अपनी आकृति गोलाकार से बहुकोणीय आकृति का रूप लेने लगते है (चित्र-2)। इसके अलावा हर प्राणी के मुंह में उपस्थित थूक (झाग), साबुन का झाग, टूथ पेस्ट, शैंपू, शेविंग क्रीम इत्यादि का झाग, समुद्र की लहरों के उठने से उत्पन्न झाग की अपनी ही विचित्र दुनिया है।

प्रश्न उठता है कि आखिर यह झाग क्या है? झाग वास्तव में गैस या हवा भरे द्रव के कई बुलबुलों का समूह होता है । यह एक ऐसी अस्थिर अवस्था है जिसमें प्रत्येक बुलबुला एक दूसरे से लगभग पानी जैसी पतली फिल्म द्वारा अलग रहता है। वैज्ञानिक भाषा में झाग, पदार्थ की किसी भी अन्य अवस्था की तरह तब तक अपना अस्तित्व बनाए रखता है

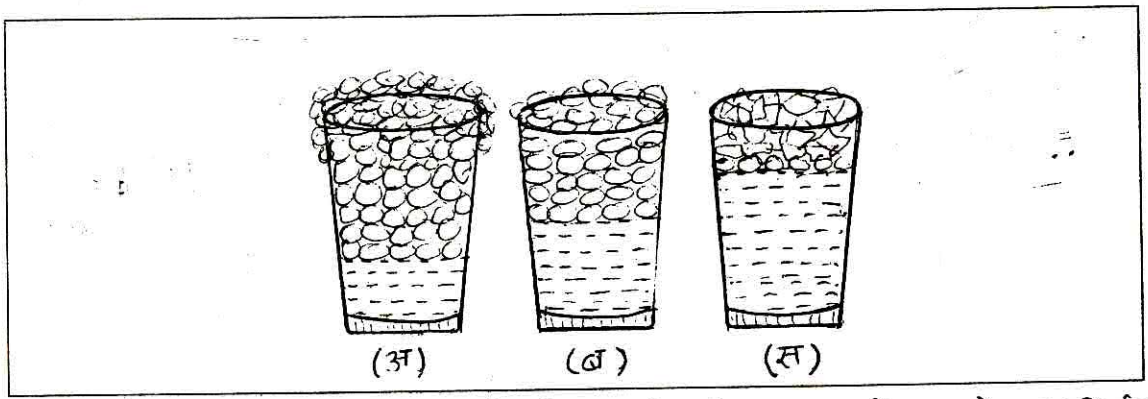

चित्र- 1 एक गिलास में डाले गए कोकाकोला या बीयर से उत्पन्न झाग में समय के साथ परिवर्तन (अ) आरंभ में गिलास में आधे से अधिक झाग, (ब) कुछ समय बाद - झाग की मात्रा कम, परंतु द्रव स्तर बढ़ा, (स) कुछ और समय के बाद - झाग का अधिक भाग द्रव में बदल गया है ।

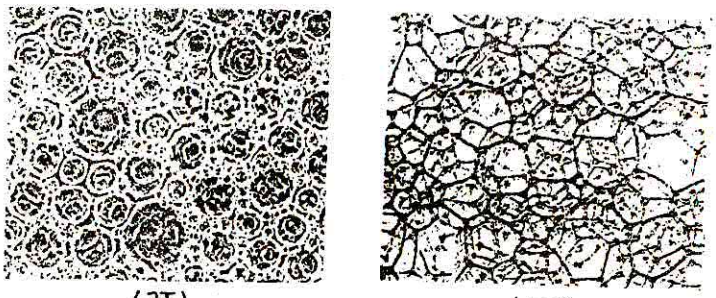

(अ) (ब)

चित्र-2 झाग के बुलबुलों की आकृतियों में परिवर्तन की दो अवस्थाएं; (अ) आरम्भ में बुलबुले नम एवं गोलाकार रहते हैं और (ब) समय के साथ साथ उनमें निहित द्रव की मात्रा कम होती जाती है, वे शुष्क तथा बहुकोणीय बन जाते हैं ।

जब तक उसकी ऊर्जा निम्नतम ऊर्जा वाली संरचना धारण नहीं कर लेती है। वस्तुतः इस ऊर्जा का मान बुलबुलों के अंदर की गैस की गतिज ऊर्जा, बुलबुलों की दीवार (खोल) बनाने वाले द्रव पदार्थ की रासायनिक ऊर्जा और तनु फिल्म का पृष्ठीय तनाव आदि सभी का योग होता है । चूंकि झाग के पृष्ठ पर रहने वाले अणुओं की ऊर्जा अन्दर निहित अणुओं की अपेक्षा अधिक रहती है, इसलिए ऊष्मागतिकी सिद्धांत के आधार पर पृष्ठ साधारणतः अस्थिर रहती है और सदैव अपने आप को उस संरचना में ढालने के प्रयास में रहती है जिससे फिल्म निम्नतम ऊर्जा अवस्था प्राप्त कर ले। इस फिल्म बनने के दौरान उसे एक ऊर्जा अवरोध का सामना करना पड़ता है। अर्थात जब फिल्म में से कुछ द्रव निकलता है ताकि

तालिका -1 : झाग कारकों का वर्गीकरण

एनायनिक	केटायनिक	नॉन आयनिक	एम्पोलिटिक
साबुन	प्राथमिक एल्कायलामोनियम लवण	पॉली हाइड्रिक एल्कोहल का ईस्टर	बेटेन्स
सल्फेटेड ईस्टर	द्वितीयक ''	एल्कोजाइलेड एमीन	एमीनो अम्ल
सल्फेटेड एमाइड	तृतीय ''	पॉलीजायाल्कीन ग्लाईकॉल	
सल्फेटेड एल्कोहल	चतुर्थ ''	का ईस्टर	
सल्फेटेड कोबॅक्सिल अम्ल	एसीलेटेड पॉलीएमीन	'' का ईथर	
पेट्रोलियम सल्फोनेट	हेटरोसायकिल एमीन के लवण	एल्केनोलामीन फैटी एसिड कंडेंसेट	
सल्फोनेटेड-एरोमेटिकऊ-हाइड्रोकार्बन	बैंजालामोनियम लवण	तृतीयक एसीटायलेनिक ग्लाइकॉल	
सल्फोनेटेड-एलिफेटिक-हाइड्रोकार्बन			
सल्फोनेटेड-ईस्टर-हाइड्रोकार्बन		डाइएल्कायल पॉलीऑक्सायलकीलीन	
सल्फोनेटेड-एमाइड-हाइड्रोकार्बन		फॉस्फेट	
सल्फोनेटेड-ईथर-हाइड्रोकार्बन			
एसीलेटेड एमीनो एसिड			
एसीलेटेड पॉलीपेप्टाइडस			
धातु एल्कॉयल फॉस्फेट			

फिल्म पतली हो सके, तो ऐसी अवस्था में कुछ पृष्ठीय बल कार्य करने लगते हैं जो इस प्रक्रिया का विरोध करते हैं। इस प्रकार वे फिल्म को और पतला होने से बचाते हैं। ये या तो विद्युतीय प्रकार के बल होते हैं, या स्टेरिक । इनकी उत्पत्ति पृष्ठ द्वारा फिल्म के अणुओं को क्रम में बांधने के फलस्वरूप भी हो सकती है। इसके अलावा पृष्ठ सक्रिय पदार्थ (झाग कारक अणुओं) भी इन बलों को जन्म दे सकते हैं। इस प्रकार झाग पर कार्य करने वाले संरक्षणात्मक तथा विध्वंशकारी बलों में साम्य हो जाने से अर्धस्थिर (मेटास्टेबल) अवस्था आ जाती है। अर्धस्थिर स्थिति वह अवस्था होती है जो केवल कम परिमाण की हलचल को ही सह सकती है ।

यह उल्लेखनीय है कि, जलीय झाग में 95% हवा और 5% द्रव होता है और इस द्रव में लगभग 99% जल एवं एक प्रतिशत झाग कारक या अन्य मिलाये जाने वाले सतह सक्रिय पदार्थ (एल्कोहोल, पॉलीमर इत्यादि) होते हैं। इन्हीं सतह सक्रिय पदार्थों के कारण शैम्पू, क्रीम, बीयर आदि में नियंत्रित झाग बनता है।

पृष्ठीय तनाव तथा झागकारक (सर्फेक्टेन्टस)

झाग बनाने में मुख्य रूप से निम्नलिखित दो घटकों की विशेष भूमिका रहती है; (I) पृष्ठीय तनाव तथा (II) झाग कारकों की उपस्थिति ।

पृष्ठीय तनाव : सामान्यतः द्रव में उपस्थित अणुओं में एक आकर्षण बल कार्य करता है। ये बल विद्युतीय प्रकार के होते हैं जो प्रत्येक अणु में उपस्थित आवेश अथवा द्विध्रुवों (आवेश का स्थाई वितरण) से उत्पन्न होता है। अध्रुवीय (नॉन पोलर) और अनावेशित अणुओं के बीच वैनडरवाल नामक बल कार्य करता है । वस्तुतः प्रत्येक अणु के इलेक्ट्रॉनिक कोष (शैल) में निरंतर होने वाली हलचलों के कारण अणु में ऋणात्मक या धनात्मक आवेशों की अस्थाई अधिकता बन जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि अणुओं के बीच एक आकर्षण पैदा हो जाता है । जब हम द्रव की बात करते हैं तो जो अणु अन्दर रहते हैं उनमें तो यह आकर्षण का बल चारों ओर से बराबर लगता है जैसे कि चित्र-3 में स्पष्ट हैं। इसके विपरीत सतह पर या उसके नजदीक रहने वाले अणुओं में परिणामी खिंचाव का बल अन्दर की ओर हो जाता है (चित्र-3)। अतः द्रव के अन्दर से किसी अणु को सतह की ओर लाने में इस खिचाव के बल के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है । परिणाम स्वरूप सतह की ऊर्जा द्रव की अंदरूनी ऊर्जा स्थिति से अधिक होती

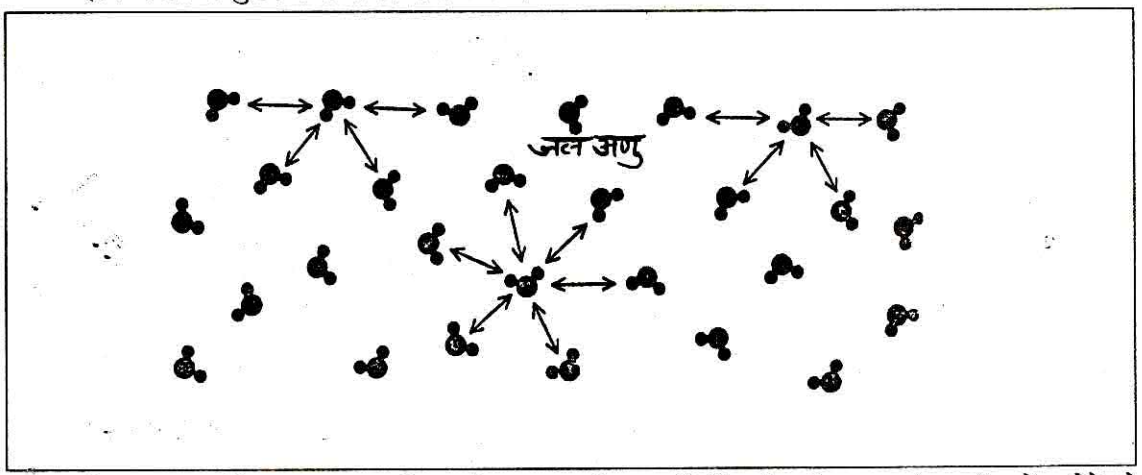

चित्र-3 द्रव में पृष्ठ तनाव की उत्पत्ति; सतह के अणुओं में परिणामी बल अंदर की ओर होने से सतह पर खिचांव बनता है ।

है। पृष्ठ पर रहने वाले असंतुलित आण्विक बलों के कारण पृष्ठीय तनाव उत्पन्न होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पृष्ठीय क्षेत्र बढ़ाने में ऊर्जा की खपत होती है।

झाग कारकों की उपस्थिति :

यह एक तथ्य है कि एक दम साफ द्रव झाग उत्पन्न करने में असमर्थ होता है। इसके लिए विशेष रासायनिक संरचना वाले कणों (अणुओं) की आवश्यकता होती है जिन्हें झागकारक कहा जाता है। जलीय झाग बनाने में मुख्य रूप से दो प्रकार के रसायनों का योगदान रहता है। पहले प्रकार के रसायन हाइड्रोफिलिक यानी जल में अत्यन्त घुलनशील होते हैं जबकि दूसरे हाइड्रोफोबिक अर्थात अत्यन्त अघुलनशील । हाइड्रोफिलिक वर्ग में OH, CO_2, Na और SO_3K आते हैं और हाइड्रोफोबिक वर्ग के अंतर्गत हाइड्रोकार्बन श्रृंखला- C_nH_{2n+1} वाले अणु। विभिन्न झाग कारकों का वर्गीकरण तालिका-1 में दर्शाया गया है।

किसी भी झाग कारक की सतही सक्रियता इन वर्गों के साइज और उनकी आपेक्षिक घुलनशीलता पर निर्भर करती है । विभिन्न झाग कारकों की, सतह सक्रियता का गुण उनकी अलग अलग घुलनशीलता के कारण होता है।

इनमें उपस्थित हाइड्रोफोबिक वर्ग हवा-पानी के इन्टरफेस (बीच की सतह) पर एकत्र होते हैं। यदि अणुओं की ऊर्जा को ध्यान में रखें तो पाते हैं कि सतह इन अणुओं के लिए पानी के अणुओं के मुकाबले अधिक अनुकूल (स्वीकारात्मक) होती है। फलस्वरुप पृष्ठ तनाव कम हो जाता है और द्रव झाग बनाने योग्य हो जाता है। उल्लेखनीय है कि झाग का कुल पृष्ठीय क्षेत्र द्रव के मुकाबले कई गुना अधिक होता है।

झाग कारक अणुओं की पानी (द्रव) में घुलनशीलता की अपनी एक सीमा होती है और जब यह सीमा आ जाती है तब पृष्ठ तनाव उससे कम नहीं किया जा सकता है। इस स्थिति में वे द्रव में घुलने के बजाय आपस में विशेष रूप से जुड़ने लगते हैं। उनका अपने चारों ओर के पानी के साथ स्पर्श कम हो जाता हैं ।

झाग की स्थिरता :

इस संबंध में 19 वीं सदी के अमरीकी भौतिक विद् जे. डब्ल्यू. गिब्बस तथा इटली के भौतिक विद्. सी.जी.एम. मारन्गोनी द्वारा प्रदर्शित परिघटनाओं के प्रभावों को जान लेना आवश्यक है । गिब्बस प्रभाव तब उत्पन्न होता है जब एक पतली फिल्म को खींचा जाता है और वह फिल्म झाग कारक अणु को घोल में पकड़ कर रखती है। इस खिंचाव के कारण पृष्ठ क्षेत्र बढ़ता है और झागकारक अणुओं को सतह पर आने का नया अवसर मिलता है । साथ ही पृष्ठ तनाव भी बढ़ता हैं। गिब्बस प्रभाव के अनुसार फिल्म एक प्रत्यास्थ खोल की भांति संकुचित होनें का प्रयास करती है ।

मारन्गोनी प्रभाव यह बताता है कि झागकारक अणु को खिंची हुई फिल्म के सतह तक प्रसरित होने के लिए कुछ समय लगता है । इसलिए सतह पर पहले बहुत कम झागकारक अणु होते हैं और पृष्ठ तनाव काफी अधिक । कुछ समय के बाद जब वे अणु सतह पर पहुंच जाते हैं तो पृष्ठ तनाव गिब्बस द्वारा बताए मान के लगभग हो जाता है।

ये दोनों प्रभाव मिलकर झाग में अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर होने वाले परिवर्तनों को सहकर उसे बनाए रखने में सहायक होते हैं। क्योंकि स्वच्छ द्रव में गिब्बस प्रत्यास्था विद्यमान नहीं होती है अतः इसकी फिल्मों में कथित सूक्ष्म स्तर के परिवर्तनों को सहने की सामर्थ्य नहीं होती हैं और झाग नहीं बन पाता है।

झाग की सतही संरचना (मार्फोलॉजी) :

झाग दो प्रकार का होता है, नम झाग तथा शुष्क झाग। नम झाग में द्रव की मात्रा अधिक होती है इसलिए इनके कोष्ठकों की दीवारें मोटी और एक

दूसरे के प्रभाव क्षेत्र से भी दूर रहती हैं । फलस्वरूप उनकी आकृति गोलाकार (पानी को बूंद की तरह)ही बनी रहती है। यह वस्तुतः पृष्ठ तनाव के कारण होता है क्योंकि वह पृष्ठ क्षेत्र को कम करने का प्रयास करता है। कुछ समय बाद जब नम झाग के बुलबुलों से कुछ द्रव निकलने लगेगा तो बुलबुलों की आकृति समिश्र होने लगेगी। इसका कारण शुष्कता का बढ़ना है। द्रव के निकलने से बुलबुलों की दीवारें पतली होने लगती है तथा वे एक दूसरे के प्रभाव क्षेत्र के अन्दर आ जाती हैं और एक दूसरे को प्रभावित करके गोलाकार कोष्ठकों को बहुकोणीय आकृति में बदल देती है। बेल्जियम के एक भौतिक शास्त्री जोसेफ ए.एस.प्लैट्यू ने लगभग एक शताब्दी पूर्व उस भौतिक सिद्धांत के बारे में बतलाया था जिसके आधार पर यह पता चलता है कि शुष्क झाग में बहुकोणीय ज्यामिति निर्मित होती है। इसके आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कोष्ठक की दीवार बनाने वाली फिल्म की सतह पहले चिकनी रहती है यानी प्रत्येक बुलबुले की वक्रता एक समान होती है। यह तो सुविदित है कि एक फिल्म तभी सपाट रह सकती हैं जब उसके दोनों ओर के कोष्ठकों में दाब बराबर रहे । इसके विपरीत वक्र फिल्म में अगल-बगल के कोष्ठकों में दाबान्तर रहता है तथा कोष्ठक के अवतल पर यह अधिक होता है।

बहुकोणीय झाग में द्रव फिल्म तथा प्लैट्यू सीमा (यानी वह जगह जो अलग अलग बुलबुलों की फिल्मों के मिलने पर बनती है, इन्हें चैनल भी कहते हैं), के बीच रहता है। इन सीमाओं का घुमाव यह बताता है कि प्लैट्यू सीमाओं पर बल कोष्ठक तथा फिल्म के बल से कम रहता है। इस कारण द्रव फिल्म से बाहर की ओर खिंचता (सीमा चूषण) है । इन बलों का संतुलन इस प्रकर रहता है कि अधिकांशतः द्रव चैनलों में आ जाता है । जब तीन झाग के बुलुबलों की फिल्में आपस में मिलकर प्लैट्यू सीमाएं बनाती हैं तो उनके बीच का कोण 120° रहता हैं। यह पृष्ठीय तनाव के बलों के संतुलन के कारण होता है।

तनु (पतली) फिल्मों पर बल :

झाग का अपना जीवन काल होता है जिसमें वह नम अवस्था से शुष्क झाग में परिवर्तित होकर समाप्ति की ओर बढ़ता है । जैसे पहले बताया जा चुका है कि झाग पहले नम रहता है और फिर समय के साथ साथ उसमें से सीमा चूषण प्रक्रिया द्वारा द्रव निकलता हैं। इससे फिल्में इतनी पतली हो जाती हैं कि उनकी आपसी सतहों के बीच पारस्परिक क्रिया होने लगती है । इस स्थिति में आने से पूर्व उनकी मोटाई उन अणुओं के मुकाबले जिनसे वह बनी हो, काफी अधिक रहती है और उन्हें स्थूल समझा जा सकता है। अर्थात दो मिलने वाले झाग के बुलबुलों की सतह अलग अलग मानी जा सकती है ।

झाग की फिल्म पर मुख्य तौर पर दो प्रकार के बल कार्य करते हैं । एक तो वह जिनका व्यापक (समग्र) प्रभाव फिल्मों को अस्थिर करना होता है तथा दूसरे वे जो इसके विपरीत दिशा में कार्य करके फिल्म को स्थिर रखने का प्रयास करते हैं । अस्थिर करने वाले बल वैनडरवाल बल होते हैं। यह बल अनावेशित अणुओं के मध्य अत्यन्त कम परास पर कार्य करनेवाला बल होता है जिसके द्वारा पृष्ठ तनाव उत्पन्न होता है तथा इसके विपरीत कार्य करनेवाले बलों में विद्युतस्थैतिक और स्टेरिक प्रकार के बल होते हैं। फिल्म में स्थैतिक विद्युत बल का कारण द्रव में आवेशित अणुओं की उपस्थिति होती है जो अधिमान्य तौर पर सतह के करीब रहते हैं ।

प्रत्येक सतह का एक गुण सतह की ऊर्जा को निम्नतम करना होता है । इसके लिए उसे स्थूल की संरचना से भिन्न कुछ परिवर्तन करने पड़ते हैं। इन परिवर्तनों में एक यह भी है कि वह सतह के पास के अणुओं को व्यवस्थित अवस्था में लाये । जैसा कि हम जानते है कि अणुओं को व्यवस्थित करने से निकाय की ऊर्जा कम हो जाती है। सतह की इस व्यवस्थित करने की प्रवृति के कारण स्टेरिक

न उत्पन्न होते हैं और इनका व्यापक प्रभाव फिल्म स्थिर बनाने की दिशा में रहता है।

यदि स्थिरीकरण बलों का जोर अधिक हो जाय फिल्म से निलकने वाला द्रव एक अर्धस्थिर (मेटा बल) अवस्था में आकर रुक जायेगा। यह फिल्म र तक बनी रहेगी जब तह कोई और बाहरी बल म नहीं करते जैसे कि वाष्पन, यांत्रिक कंपन या बुलों कि अन्दर की हवा का प्रसरण । यह कोई श्चर्य की बात नही है कि एक अलग रखा थक्कीकृत) बुलबुला कई वर्षों तक स्थिर रह सकता यदि उसे वाष्पन और कंपन जैसे बाहरी बलों के ाव से सुरक्षित रखा जा सके ।

ाग का समर्पण प्रतिबल :

झाग द्रव के समान बह सकता है और ठोस जैसे स्थिर भी। उदाहणार्थ दाढ़ी बनाने में प्रयुक्त म (शेविंग क्रीम) का झाग आसानी से फैलाया जा कता है जबकि साबुन के झाग को नहीं । यह गुण ाग के समर्पण प्रतिबल से संबंध रखता हैं। प्रतिबल ाई क्षेत्रफल पर कार्य करने वाले उस बल के परिमाण बराबर होता है जो झाग के कोष्ठकों को एक वस्था से दूसरी अवस्था मे परिवर्तन करने की क्षमता ता है। शुष्क फिल्मों के लिए यह पृष्ठतनाव के मानुपाती तथा कोष्ठक के साईज के विलोमानुपाती ता है । शेविंग क्रीम के झाग के कोष्ठकों का साइज ाबुन के झाग के कोष्ठक के साइज के मुकाबले हुत कम होता है।

ाग बनाने की विधियां :

झाग बनाने की कुछ विधियों की संक्षेप में ानकारी यहां दी गयी है।

अ) एयरोसोल विधि : इसमें झाग देने वाला व (झागकारक मिश्रित जल) तथा फोमिंग कारक गैस ाइसोब्यूटेन या फ्लूरोकार्बन जिसे उच्च दाब पर द्रव घोला गया हो) का प्रयोग होता है। जब दाबित र्तन से फोमिंगकारक को झाग बनानेवाले द्रव में छोड़ा जाता है तो वह गैसीय रूप में आकर झाग के कोष्ठक बनाता है । उल्लेखनीय है कि सॉफ्ट पेय, बीयर इत्यादि में कार्बनडाईऑक्साइड को उच्च दाब पर इनमें घोल दिया जाता है, इसलिए जैसे ही ढक्कन खोला जाता है, कार्बन डाई ऑक्साइड गैस में परिणित होकर झाग का उफान बनाने लगती है।

(ब) स्तंभ विधि : इस विधि में झाग देने योग्य द्रव मिश्रण तथा गैस का एक स्टेनलैस स्टील वूल या कांच की छोटी-छोटी गोलियों के ठसाठस भरे स्तंभ से गुजारते हैं । इससे इन अवरोधकों पर छोटी छोटी फिल्म तैयार हो जाती है जो गैस के प्रभाव से बुलबुलों (झाग) के रूप में बाहर निकलती हैं ।

कम घनत्व का झाग यांत्रिक या वायु चूषित्र (एस्पिरेटर) जनित्र द्वारा भी बनाया जाता है। यांत्रिक जनित्र में झाग देने योग्य द्रव को एक धातु की छन्नी के ऊपर स्प्रे कर दिया जाता है तथा फिर एक पंखे द्वारा इस छन्नी पर हवा का प्रवाह बनाया जाता है। यह कुछ वैसी ही प्रक्रिया है जैसी बच्चे एक छल्ले में से साबुन का झाग फूक मारकर बनाते है। वायु चूषित्र जनित्र विधि भी यांत्रिक जनित्र जैसी ही है परंतु इसमें कोई पंखा नहीं होता बल्कि द्रव स्प्रे के दौरान ही आवश्यक वायु उपलब्ध करायी जाती है।

दो किस्म के कम घनत्व वाले झाग को तैयार किया जा सकता है जिनके उपयोग भी भिन्न होते है। पहले प्रकार का झाग कम फैलाव वाला होता है जिसका घनत्व 1-2 ग्राम प्रति घन सेमी. के बीच रहता है। इसे तैयार करने के लिये एक नॉजल से वायु खींचकर झागकारक मिश्रित पानी के प्रभावी आयतन को काफी अधिक बढ़ा देता है। साथ ही झागकारक अणुओं की वजह से पृष्ठ तनाव के कम रहने से उसकी भिगाने की समार्थ्य भी बढ़ जाती हैं।

दूसरे प्रकार का झाग अधिक फैलाव वाला होता है जिसका घनत्व 0.002 से 0.5 ग्राम प्रति घन सेमी के लगभग रहता है। इसे एक विशेष तरीके के संशोधित नॉजल तथा यांत्रिक अथवा वायु चूषक जनित्र द्वारा

बनाया जाता है। इसमें पानी की मात्रा बहुत कम होती है।

अनुप्रयोग :

यूं तो झाग जनजीवन में एक आम पदार्थ की तरह है जिससे प्रायः सभी लोग परिचित है परंतु इसके कुछ विशेष गुणों के कारण इसकी उपयोगिता कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में है। अग्नि शमन, प्राकृतिक गैस एवं तेल की पुनर्प्राप्ति, ट्रेप, अयस्कों के शुद्धि करण से लेकर प्रतिरक्षा तक के कार्यों में इसके अनुप्रयोग हैं।

अग्निशमन कार्य : इस कार्य में दोनों ही कम तथा अधिक फैलाव वाले झाग का अलग अलग प्रयोग किया जाता है। कम फैलाव वाले झाग का उपयोग उन स्थलों में किया जाता है जहां आग वाले क्षेत्र में ऐसे पदार्थ हों जो गीले होने से खराब नहीं होते हैं । ध्यान रहे कि कम फैलाव वाले झाग में पानी की मात्रा अधिक होती है। अधिक फैलाव वाला झाग बंद तथा अनधिगम्य स्थानों के लिए उपयोगी है जैसे जहाजों, खानों में फंसे लोगों के बचाव में । क्योंकि इसमें पानी की मात्रा कम होती है इसलिए फंसे लोगों को इसके फैलाव से सांस लेने में कठिनाई नही होती। दूसरे परंपरागत अग्निशमन के तरीकों में प्रयुक्त अत्यधिक पानी से कागज, फाईल्स, कंप्यूटर तथा अन्य यंत्रों को जो हानि होती थी उसे काफी कम किया जा सकता है । इसका उपयोग ज्वलनशील द्रवों के संचायक टैंकों में लगी आग को बुझाने में होता है। इसके लिए झाग को टैंक के तलहटी में प्रवेश कराते हैं, जहां से वह सतह की ओर उठता है और अधिक से अधिक क्षेत्र को ढक कर आग बुझा देता है।

तेल तथा प्राकृतिक गैस के निष्कासन में उपयोग:

तेल तथा गैस के कुओं में काफी पानी रहता है जिसे निकालना आवश्यक होता है। यदि उचित झागकारक को पानी में मिलाकर, कुएं की तलहटी में बुलबुलों के रूप में हवा भेजी जाय तो पानी झाग के रूप में बाहर निकल जाता है।

झाग की श्यानता का लाभ एक ड्रिलर को एक दिशा प्रवर्तक (डाइवर्टिंग कारक) के रुप में मिलता है। टार सैंड (एक किस्म का तेल का संचायक) से तेल निकाल ने के लिए भाप को तेल के कुएं में इंजेक्ट करते हैं। भाप संचायक को गर्म करके तेल की श्यानता को कम कर देते है ताकि यह रेत से कुएं में बह सके । इसें विधि में कुछ चैनल बन जाते हैं जहां भाप ट्रैप (फंस) हो जाती है। इसे निकालने के लिए चैनल में झाग को इंजेक्ट करते हैं जिससे वह फिर से रेत में वापस चली जाती हैं।

एक अन्य प्रचलित अनुप्रयोग है - गैस अथवा तेल धारक संरचना (ऑयल बियरिंग फार्मेशन) में दरार बनाने में । साधारणतः तेल उद्योग में तेल धारक संरचना में दरार बनाने के लिए कुएं को दाबित करते हैं। इससे हाइड्रोकार्बन का बहाव बढ़ जाता हैं। अक्सर रेत को दाबित करने वाले द्रव के साथ प्रोप्पेन्ट के रूप में दरार को खुला रखने के लिए मिलाते हैं। यदि झाग को दाबित द्रव के रूप में प्रयुक्त किया जाय तो प्रोप्पेन्ट का नीचे बैठने का समय कम हो जाता है और उसके यथा निश्चित स्थल पर पहुंचने के अवसर बढ़ जाते हैं। चूंकि झाग के माध्यम से फार्मेशन में द्रव कम मात्रा में पहुंचता है अतः वह कम प्रदूषित होता है।

ट्रैप के रूप में झाग :

जलीय झाग का एक और उपयोगी गुण है पदार्थ (ठोस, द्रव अथवा गैस) का अचलीकरण/ट्रैप करना/इसलिए इसे टॉक्सिक/ज्वलनशील द्रवों को रोकने (ट्रैप) के लिए प्रयोग में लाते हैं। झाग का कम घनत्व, अर्ध स्थिरता एवं ट्रैपिंग का गुण बिखरे हुए रेडियो सक्रिय पदार्थों की सफाई में लाया जाता है। इससे उनके बिखराव का क्षेत्र कम किया जा सकता है।

झाग पदार्थ की अत्यन्त कम मात्रा को समान रूप से वितरित कर सकता है। घरेलू उपयोग में बालों

को सैट करने, शुक्राणु निरोध का वितरण, फेब्रिक उद्योग में रंग तथा रेजिन को समान रूप से वितरित करने, फसलों के उपचार हेतु रसायनों का छिडकाव इत्यादि में विभिन्न प्रकार के झाग का उपयोग किया जाता है। झाग के कारण फेब्रिक बहुत कम पानी सोखता है इसलिए उसको सुखाने में ऊर्जा की बचत के साथ साथ गुणता में भी सुधार आता है।

अयस्क शोधन

फ्रोथ फ्लोटेशन की विधि धात्विकी के क्षेत्र में अयस्कों के शोधन में काफी प्रचलित है । लगभग 10^{12} मिट्रिक टन से ज्यादा अयस्क प्रतिवर्ष इस विधि से शुद्ध किए जाते हैं। इस विधि में अयस्कों को बारीक पीसकर झाग योग्य घोल में डाल दिया जाता है। यांत्रिक कंपन (हलचल) द्वारा झाग ऊपर उठता है। अयस्क के धातु समृद्ध तथा कम धातु वाले भागों की भीगने की अलग अलग क्षमताएं होती हैं। कम धातु वाले भाग साधारणतः हाइड्रोफिलिक होते हैं अतः आसानी से झाग से भीग जाते हैं और नीचे बैठने लगते हैं। इसके विपरीत धातु समृद्ध भाग झाग के साथ ऊपर उठ जाते हैं जहां उसे एकत्र कर लेते हैं।

रंगों को पृथक करने में भी झाग का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इनमें खास रंगों को आकर्षित करने का गुण भी होता है। ग्रीन हाउस (हरित घरों) में कम घनत्व के जलीय झाग द्वारा रात के समय ऊष्मा को बाहर निकलने से रोका जाता है। झाग ऊष्मीय तौर पर कुचालक होता है । इस कार्य के लिऐ अर्ध पारदर्शक प्लास्टिक के द्विसतही छत के भीतर शाम के समय झाग पंप कर देते हैं। सुबह धूप पडने पर झाग पानी में बदल जाता है । जिसे पुनः शाम को झाग में परिणित करके पंप कर देते हैं।

विस्फोट ध्वनि अवरोधक :

विस्फोटक पदार्थ के चारों ओर झाग फैला दिया जाय तो विस्फोट के दौरान उत्पन्न होने वाली शॉक तरंग की कुछ ऊर्जा झाग को पानी की बूंद में बदलने तथा बची ऊर्जा की काफी अधिक मात्रा बूंदों को भाप के रूप में उड़ाने में लग जाती हैं। झाग विस्फोट के दौरान उड़ने वाले कणों को रोकने में भी समर्थ होता है। प्रतिरक्षा कार्यों में बड़ी बड़ी बंदूकों की नॉजल को झाग से ढ़क देने से विस्फोट की आवाज कम कर सकते हैं।

छपते छपते ... पता चला है कि संसार का सबसे बड़ा बुलबुला न्यूजीलैंड निवासी ने हाल ही में बनाया है जिसकी चौड़ाई लगभग 20 मी. तथा दीवार की मोटाई लगभग एक मि.मी. के दस लाखवें भाग के बराबर मापी गयी ।

जलीय झाग वैज्ञानिकों के लिए सदैव ही रुचिकर रहा है। अत्यधिक सतह क्षेत्र होने तथा समिश्र भौतिक एवं रसायन परिघटनाओं के कारण इसका महत्व बना हुआ है । बुलबुले तथा फिल्म अपने आप में सुन्दर तो हैं ही परंतु क्षण भंगुर होते है। क्षण भंगुरता का असाधारण गुण तथा विभिन्न अनुप्रयोग, इस विषय में रुचि को अपने आप न्याय संगत बनाते हैं।

(पृष्ठ 15 का शेष भाग)

की प्रक्रिया को व्यावसायिक स्तर पर उपयोग में लाने की बहुत संभावना है । लेकिन यह इस पर निर्भर करता है कि भारत तथा अन्य देशों से कितनी मात्रा स्क्रैप में मिलती है । फैरो नायोबियम से नायोबियम बनाने की तकनीक भी काफी प्रभावी सिद्ध हो सकती है लेकिन इसका पायलेट संयंत्र स्तर पर और अध्ययन आवश्यक है ताकि लागत आदि का अनुमान लगाया ज़ा सके ।

ओजोन परत का क्षयीकरण : एक पर्यावरणीय समस्या

डॉ. गणेशकुमार पाठक,
प्राध्यापक, भूगोल विभाग,
महाविद्यालय दूबेछपरा,
बलिया (उ. प्र.) - 277 205

ओजोन एक नीले रंग की तीखी गंध वाली वह गैस है जो वायुमंडल में 25 से 28 किमी. की उंचाई पर रहती है । यह प्राणी जगत पर हानिकारक प्रभाव डालने वाली पराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । वायुमण्डल में इस गैस की कमी निरंतर होती जा रही है जिसका कारण वायुमडल में क्लोरो-फ्लोरो कार्बन की बढ़ती मात्रा है । इस ओजोन सुरक्षा कवच के क्षीण होने से विश्व काफी चिंतित है । इसके बचाव की दिशा में आज कई प्रयास चल रहे है । एक सरल एवं रोचक ढंग से इस समस्या से संबंधित पहलुओं को प्रस्तुत लेख में उजागर किया गया है।

संरचना की दृष्टि से वायु मण्डल को मुख्य रूप से चार क्षेत्र: क्षोम मण्डल, समताप मण्डल, ओजोन मण्डल एवं आयन मण्डल में विभक्त किया जा सकता है जिसमें क्षोम मण्डल धरातल से 12 किमी. की ऊंचाई तक, समताप मण्डल 13 से 25 किमी, ओजोन मण्डल 25 से 28 किमी., एवं आयन मण्डल 29 किमी. से ऊपर के क्षेत्रों में विस्तृत है। ओजोन गैस एक नीले रंग की तीखी गंध वाली गैस है । यह तीव्र उपनयन कारक है एवं एक प्रदूषक गैस है । ऑक्सीजन एवं ओजोन में मुख्य अन्तर यह है कि ओजोन के एक अणु में ऑक्सीजन के तीन परमाणु होते हैं, जब कि सामान्य ऑक्सीजन में दो परमाणु होते है।

मात्र इसी अन्तर के कारण ही ओजोन गैस में पराबैंगनी प्रकाश को अवशेषित करने की क्षमता आ जाती है । जिससे यह जीव जगत के लिए अमूल्य वरदान सिद्ध हुई है । ओजेन गैस की यह परत पृथ्वी की सुरक्षा का कार्य करती है, जो सूर्य से आने वाली विनाशकारी पराबैंगनी किरणों का 93 प्रतिशत भाग अवशोषित कर लेती है एवं मात्र 7 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी तक पहुंच पाता है ।

पराबैंगनी विकिरण का अवशोषण मुख्य रूप से हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बनडाई ऑक्साईड एवं ओजोन गैस मिलकर करती है, जिसमें से कार्बन डाई आक्साईड एवं हाइड्रोजन लगभग 2000, ऑक्सीजन 2200, एवं ओजोन 300 आंगस्ट्राम की विकिरणों को अवशोषित करते है। यही कारण है ओजोन परत को पृथ्वी का सुरक्षा कवच कहा गया है ।

ओजोन परत का निर्माण वायुमण्डल में एक प्राकृतिक प्रक्रिया के तहत होता है । प्रारम्भिक वायुमण्डल में मात्र नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साईड, क्लोरिन एवं जल वाष्प ही विद्यमान थे। कालान्तर में रासायनिक प्रतिक्रियाओं के कारण वायुमण्डल में अमीनों अम्ल एवं जैव आणविक घटकों की रचना हुई । तत्पश्चात जलवाष्प के ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साईड के आक्सीजन तथा कार्बोहाइड्रेट में बदल जाने से वायुमण्डल में ऑक्सीजन का निर्माण हुआ एवं तत्पश्चात ओजोन गैस बनी।

ओजोन का कुछ अंश प्राकृतिक रूप से क्षय होता रहता है । ओजोन ऑक्सीजन के स्वतन्त्र अणुओं के साथ क्रिया करके ऑक्सीजन में बदल जाती है। यह प्राकृतिक रूप से प्राप्त नाईट्रिक ऑक्साइड से क्रिया के कारण भी आक्सीजन में परिवर्तित हो जाती

है । मिट्टी में बैक्टीरिया जन्य क्रियाओं के कारण नाइट्रिक ऑक्साईड बनता है जो ट्रोपोस्फेअर से होकर धीरे-धीरे स्ट्रेटोस्फेयर में प्रवेश कर जाता है और वहाँ आक्सीजन से क्रिया करके नाइट्रिक आक्साईड में परिवर्तित हो जाता है। नाइट्रिक आक्साइड की कुछ मात्रा कास्मिक किरणों की वायुमंडलीय गैसों से क्रिया के कारण भी बनती हैं। इसी क्रिया से ओजोन की सांद्रता में परिवर्तन एवं सूर्य के आवर्त काल के मध्य सम्बन्धों का पता चलता है। यही क्रिया पृथ्वी पर आने वाली कास्मिक किरणों को भी नियंत्रित करती है । नाइट्रिक ऑक्साइड स्ट्रेटोस्फेयर से निचले भाग में धीरे-धीरे विसर्जित होता रहता है, जहाँ अन्य वायु मण्डलीय तत्वों के साथ मिलकर नाइट्रिक एसिड में बदल जाता है एवं पुनः वर्षा के जल के साथ मिलकर पृथ्वी पर वापस आ जाता है। स्ट्रेटोस्फेयर में नाईट्रिक ऑक्साईड अपनी उत्प्रेरणात्मक क्रियाओं से ओजोन को नष्ट कर देता है।

यह प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है।

$$NO + O_3 \rightarrow NO_2 + O_2$$

$$O_3 \xrightarrow{\text{प्रकाश ऊर्जा}} O_2 + O$$

$$NO_2 + O \rightarrow NO + O_2$$

सम्पूर्ण प्रतिक्रिया $2O_3$ + प्रक्रिया -ऊर्जा $\rightarrow 3O_2$

उपर्युक्त क्रियाओं में ओजोन का निर्माण एवं क्षय होना इस तरह संतुलित होता है कि वायुमण्डल में ओजोन का एक निश्चित सान्द्रण निरन्तर बना रहता है।

ओजोन परत का महत्व : ओजोन पराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पराबैंगनी किरणों का जीव जन्तुओं पर आनुवंशिक प्रभाव भी पड़ता है फलतः जीवों में आनुवांशिक विकृति पैदा हो जाती है। जिससे त्वचा झुलस जाती है एवं त्वचा कैंसर का फैलाव तीव्र गति से होता है। त्वचा की सबसे ऊपरी सतह की कोशिकाएँ टूटकर क्षतिग्रस्त हो जाती है एवं हिस्टेकीत नामक रसायन, जो इन क्षतिग्रस्त कोशिकाओं से उत्पादित होते है, के प्रभाव से निमोनिया, ब्रोंकाइटिस एवं अल्सर जैसे रोगों में वृद्धि होने लगती है । आँखों में मोतिया बिन्दु की बीमारी हो जाती है। आँखों में सूजन आ सकती है एवं उसमें घाव भी हो सकते है। साँस सम्बन्धी अनेक बीमारियाँ भी जन्म ले लेती है।

उत्परिवर्तन ते कारण पराबैंगनी किरणें अनेक तरह के कैंसर उत्पन्न करने में सहायक होती हैं, जिसमें मौलिग्नेन्ट एवं मेलेनोमा आदि है । इसमें रोगियों की अत्यन्त कष्टदायक मृत्यु हो जाती है।

अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि ओजोन की मात्रा में मात्र एक प्रतिशत की कमी से चर्म कैंसर के रोगियों में दो लाख की वृद्धि हो जायेगी ।

ओजोन का क्षय : सर्व प्रथम सन् 1970 में ब्रिटेन के पर्यावरण वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया कि वायु मण्डल में ओजोन की मात्रा में धीरे-धीरे कमी होती जा रही है इसके बाद सन् 1974 में ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने इस बात का भी पता लगाया कि अण्टार्टिका महाद्वीप के ऊपर ओजोन परत में एक बड़ा छिद्र हो गया है। सन् 1985-86 में वैज्ञानिकों ने आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड के ऊपरी वायुमण्डल में भी ओजोन परत में एक छिद्र का पता लगाया, जो प्रत्येक वर्ष कुछ कुछ महीनों के लिए बन जाता है।

सन् 1985 से पूर्व केवल उच्च अक्षांशों में ही ओजोन का स्तर घट रहा था, किन्तु अब मध्य अक्षांशों में भी ओजोन कवच कमजोर हो रहा है। आर्कटिक के ऊपर भी ओजोन का क्षय हो रहा है। आर्कटिक के ऊपर की छिद्र की तुलना में अंटार्कटिका के ऊपर का छिद्र अमेरिका के क्षेत्रफल के बराबर था, जो सन् 1987 में पूरे अंटार्कटिका में छा गया तथा सन् 1988 एवं 1989 में उसका विस्तार और बढ़ गया।

सन् 1987 में अंटार्टिका पर वैज्ञानिकों ने

ओजोन परत के क्षय का विस्तृत अध्ययन किया । वैज्ञानिकों ने यह अध्ययन न केवल भूमि पर रहकर किया, बल्कि वे उस स्थान तक भी गए जहाँ यह क्रिया हो रही थी। अगस्त के मध्य एवं सितम्बर के अन्त में वैज्ञानिकों ने ओजोन छिद्र के निचले भाग में 12,000 से 13,000 मीटर की ऊंचाई पर एक यंत्र वायुयान डी.सी. भेजा । इसके बाद एक दूसरा खोजी यान सीधे ओजोन में भेजा गया । इन पर्यवेक्षणों से यह ज्ञात हुआ कि अंटार्टिका महाद्वीप पर ओजोन की मात्रा में कमी आ रही है एवं इस छिद्र का व्यास लगातार बढ़ता ही जा रहा है । यह छिद्र उत्तर दिशा की ओर बढ़ रहा है और विगत कुछ दशकों में ओजोन का स्तर 3 से 7 प्रतिशत तक कम हुआ है और अगले 70 वर्षों में यह 10 प्रतिशत तक क्षति ग्रस्त हो जायेगी । एक अन्य आकलन के अनुसार मात्र 30 से 40 वर्षों में वायुमण्डल में ओजोन की मात्रा में 10 से 20 प्रतिशत की कमी आ सकती है ।

ओजोन के क्षय के कारण : ओजोन का क्षय क्यों हो रहा है इस संबंध में अनेक वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक संस्थान शोध कार्य कर रहे हैं। अब तक किए गए शोधों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भौतिक सुख-सुविधाओं को अधिक से अधिक प्राप्त कर लेने की अंधी दौड़ में लिप्त आधुनिक मानव ही ओजोन के क्षय का मूल कारण है।

वैज्ञानिकों ने इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से गणना करके यह ज्ञात किया है कि कौन से रसायन पूर्ण प्रकाश की रोकथाम करते हैं एवं ओजोन छतरी में छिद्र के वास्तविक कारण क्या है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार ओजोन की परत में उन क्लोरीन यौगिकों की मात्रा में अतिशय वृद्धि हुई है जिनमें क्लोरीन मिश्रित तत्वों की अधिकता है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार क्लोरीन के लिए जहाँ ज्वालामुखी उत्तरदायी हैं वहीं क्लोरीन की अधिकता कारण स्वयं मानव है। एक निश्चित मात्रा के बाद क्लोरीन ओजोन को खत्म करना प्रारम्भ कर देती है।

ओजोन को नष्ट करने वाले अब तक ज्ञात कारणों में क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन (सी.एफ.सी.) सबसे महत्वपूर्ण है। क्लोरो-फ्लोरो वर्ग के रसायनों का उपयोग प्रायः रेफ्रिजरेटरों को ठंडा रखने, वातानूकुल यंत्रों, प्लास्टिक, रंग-रोगन, आदि उद्योग में होता है, जो दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है।

रेफ्रिजरेटरों को ठंडा करने वाली गैस फ्रिओन, अनेक दुर्गन्धनाशक, कीटनाशक, प्रसाधन की सामग्री, क्लोरो-फ्लोरो कार्बन समूह के यौगिक हैं। क्लोरो-फ्लोरो ऐसे रसायनिक यौगिक हैं जिनमें कार्बन एवं हाइड्रोजन के परमाणुओं के अतिरिक्त क्लोरीन एवं फ्लोरिन के परमाणु भी होते है ।

स्ट्रेटोस्फीयर में आज क्लोरीन की मात्रा प्राकृतिक मात्रा से लगभग दुगनी हो गयी है, जो एक गम्भीर खतरे एवं चिन्ता की बात है। कारण कि ये गैसें दीर्घजीवी होती हैं जो बैक्टोरिया के आक्रमण से भी नष्ट नहीं होती एवं वायुमण्डल में पहुँच कर ओजोन के अणुओं से प्रतिक्रिया कर उन्हें सामान्य ऑक्सीजन में बदल देती है। इसका एक अणु ओजोन के एक लाख अणुओं को आसानी से नष्ट करने की क्षमता रखता है।

वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि यदि वर्तमान दर से क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन वर्ग के रसायनों के उपयोग एवं उत्पादन में वृद्धि होती रही तो वायुमण्डल के विभिन्न परतों में अब तक क्लोरो-फ्लोरो कार्बन की मात्रा का अत्यधिक विस्तार हो जायेगा । ट्रोपोस्फीयर में तो ये अविघटित रहती है, किन्तु स्ट्रेटोस्फीयर में पराबैंगनी किरणों की बहुलता के कारण इसका विघटन प्रारंम्भ हो जाता है। फलतः इनका मुख्य अवयव, क्लोरीन जटिल रासायनिक क्रिया द्वारा ओजोन को नष्ट कर देता है। क्लोरीन इस क्रिया में उत्प्रेरक की भाँति कार्य करती है। इस क्रिया के कारण ओजोन की मात्रा वायु मण्डल में कम होने लगती है और यही ओजोन परत मे छिद्र बनने का प्रमुख कारण है ।

ओजोन परत के नष्ट होने का दूसरा मुख्य कारण पेड-पौधे अर्थात वनों का अंधाधुन्ध विनाश है। वनों का सफाया हो जाने से ऑक्सीजन का निर्माण कम होता जा रहा है जिससे अन्ततः ओजोन के निर्माण में कमी आती जा रही है। इस प्रक्रिया में ओजोन का क्षय तो नहीं होता बल्कि ओजोन का निर्माण ही नहीं होने पाता है। तीसरा कारण नाईट्रिक ऑक्साइड एवं क्लोरीन ऑक्साइड गैसें हैं । ये विभिन्न स्रोतों से वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं । एक तो हवाई जहाज के इंजनों से उत्सर्जित उच्चताप, जिसके प्रभाव से वातावरण की कुछ ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन आपस में संयोग कर नाइट्रिक ऑक्साईड गैस का निर्माण करती है दूसरे रूप में वायु मण्डल में इसकी पहुँच परमाणु बम के विस्फोट से उत्पन्न भीषण ताप, जिसके कारण भी वायु मण्डल में नाइट्रिक ऑक्साईड का निर्माण होता है । यह गैस सी.एफ.सी.-11, एवं सी.एफ.सी.-12 की तरह ओजोन के अणुओं को सामान्य ऑक्सीजन में बदल देने की क्षमता रखती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार एक मेगाटन शक्ति वाले परमाणु बमों के विस्फोट से 5 हजार टन नाइट्रिक ऑक्साईड का निर्माण होता है, जिससे 50 लाख टन ओजोन सहज रुप से ही नष्ट हो सकती है। वैज्ञानिकों द्वारा लगाए गए अनुमान के अनुसार वायु मण्डल में 4.08 अरब टन ओजोन गैस विद्यमान है, जो मात्र एक हजार मेगाटन शक्ति वाले परमाणु बमों के विस्फोट से ही नष्ट हो जायेगी । किन्तु आश्चर्य एवं सोचनीय बात तो यह है कि आज रूस एवं अमेरिका में ही 50 हजार मेगाटन शक्ति के परमाणु बमों का निर्माण हो चुका है । अतः सोचने की बात है कि भविष्य में यदि कभी परमाणु युद्ध हो गया तो उसका कितना भयंकर परिणाम भुगतना पड़ सकता है ।

अंटार्कटिका के वायुमण्डल में हुए ओजोन छिद्र के बारे में कुछ वैज्ञानिकों की राय है कि पर्यावरण में होनेवाली रासायनिक अभिक्रियाओं के दौरान इस छेद्र का निर्माण हुआ है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि सौर मण्डल में होने वाली किसी उथल -पुथल के कारण इस छिद्र का निर्माण हुआ है, जब कि रूसी वैज्ञानिकों का मत हैं कि सन् 1982 ई. में मैक्सिको के एच-चिम्बोन ज्वालामुखी के प्रबल विस्फोट के पश्चात सम्पूर्ण पृथ्वी पर ओजोन की मात्रा कम हो गयी थी, जिसके परिणाम स्वरूप ही इस छिद्र का निर्माण हुआ जो 15 से 25 किमी की ऊँचाई पर विस्तृत है।

वैज्ञानिकों के अनुसार मिलों, कल-कारखानों, वाहनों एवं विमानों के धुँए से भी ओजोन गैस नष्ट हो रही है। रूसी वैज्ञानिक निरोलाई पबान्सकी का मत है कि जिस गति से नौवें दशक में वायु मण्डल में प्रदूषण का स्तर बढ़ा है, अगर यही गति बनी रही तो अगली सदी के मध्य तक वायु मण्डल में ओजोन की मात्रा में लगभग 9 प्रतिशत की कमी आ जोयेगी।

विभिन्न देशों में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन, सी.एफ.सी. गैसों के उत्सर्जन एवं प्रति व्यक्ति कार्बन-डाई-ऑक्साईड के फैलाव की स्थिति को क्रमशः तालिका 1, 2 एवं 3 से समझा जा सकता है।

तालिका - 1 : ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन

देश	उत्सर्जन	
	अरब टन कार्बन में	प्रतिशत में
अमेरिका	1000	31.94
सी.आई.एस.	690	22.04
ब्राजील	610	19.46
चीन	380	12.14
भारत	230	7.35
जापान	220	7.03

स्रोत - इण्डिया टुडे, 15 जून 1992. पृ. 47

उपर्युक्त तालिकाओं से स्पष्ट है कि ओजोन परत को नष्ट करने वाली गैसों का उत्पादन एवं उपभोग विकसित देश ही अधिक कर रहे है।

ओजोन परत के क्षय होने में अब अंतरिक्ष अनुसंधान भी कम उत्तरदायी नहीं है । रॉकेट प्रणालियों

तालिका - 2 : सी.एफ.सी. गैसों का उत्सर्जन

देश	सी.एफ.सी. की मात्रा (अरब मीट्रिक टन कार्बन में)
अमेरिका	350
सी.आई.सी.	180
जापान	100
चीन	32
भारत	0.7
ब्राजील	16

स्रोत - इण्डिया टुडे 15 जून 1992 पृ. 49

तालिका - 3 : प्रति व्यक्ति कार्बन डाई ऑक्साईड का फैलाव

देश	CO_2 का फैलाव प्रतिव्यक्ति (टन में)
अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया	15 से उपर
जर्मनी, सी.आई.एस. पौलैन्ड	10-15
स्वीडन, हालैण्ड, ब्रिटेन, फ्रान्स, स्पेन, द. अफ्रिका, जापान, इसराइल	5-10
मैक्सिको, अर्जेटीना, मिस्र, मलेशिया, ब्राजील, इरान, तुर्की, चीन,	1-5
अंगोला, केनेडा, फिलिपाइन्स, हिकोशिया, भारत	1 से कम

स्रोत - आज हिन्दी दैनिक 17 जून 1992

का आकार एवं प्रक्षेपणों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अब तक 2000 उपग्रहों का अंतरिक्ष में प्रदूषण फैल चुका है । जब रॉकेट ओजोन कवच से होकर गुजरते हैं । तो वे उसकी अखण्डता को नष्ट करते हैं। जब सैटर्न-5 राकेट की सहायता से अंतरिक्ष यान स्काईलैब को कक्षा में स्थापित किया गया उससे ओजोन कवच की 1800 किमी व्यास की खिडकी खुल गई जो डेढ़ घण्टे बाद ही बन्द भी हो गयी । वैज्ञानिकों ने विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला है कि थोड़ी सी अवधि के अन्दर ऐसे 125 यानों को छोड़ा जाए तो ओजोनकी समूची परत ही नष्ट हो जायेगी । गणनाओं से ज्ञात हुआ है कि परिवहन रॉकेट की कुल 85 उड़ानें प्रतिवर्ष से अधिक होने पर भी ओजोन मण्डल का क्षय हो जायेगा ।

ओजोन कवच की सुरक्षा : ओजोन कवच की सुरक्षा की जिम्मेदारी किसी एक देश की नहीं है, बल्कि यह विश्व के सभी देशों की सांझी जिम्मेदारी है । कारण कि ओजोन क्षय से उत्पन्न दुष्परिणाम को सम्पूर्ण विश्व को भुगतना पड़ेगा। यही कारण है कि ओजोन कवच की सुरक्षा हेतु विश्व स्तरीय प्रयास जारी है एवं विश्व के अनेक वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक संस्थाएं इसकी सुरक्षा के उपायों को ढूंढने में लगी हैं।

यही कारण हैं कि इस खतरे के जवाब में विश्व के औद्योगिक देश सन् 2000 तक क्लोरो-फ्लोरो कार्बन एवं ओजोन को नष्ट करने वाले रासायनिक पदार्थोंका उत्पादन समाप्त कर देनेपर सहमत हो गए है । विकासशील देशों को भी सन् 2010 तक ऐसा करना होगा। इसके बावजूद भी कुछ न कुछ सी.एफ.सी. वायुमण्डल में 75 से 125 वर्ष तक कायम होगा। इससे यह समस्या तब भी जटिल ही बनी होगी । उर्ध्वकर, वायुमण्डल, अनुसंधानों के अनुसार यदि वायुमण्डल में एक औंस भी क्लोरीन और न जोड़ी जाय, तो भी ओजोन के स्तर को 1925 से पूर्व की उस स्थिति में लौटने में लगभग एक शताब्दी का समय लग जायेगा ।

इस समस्या से निपटने हेतु सन् 1987 में विश्व पर्यावरण संबंधी संस्थाओं ने सी.एफ.सी. के प्रयोग पर रोक लगा दी है। इसके बावजूद भी इस गैस का प्रयोग धडल्ले से हो रहा है और विश्व में लगभग 750 हजार टन गैस प्रतिवर्ष वातावरण में छोड़ी जा रही हैं, जिसका ओजोन पर घातक प्रभाव पड़ता है। अतः इस पर पूर्णतः रोक आवश्यक है।

24 दिसंबर 1987 को इसपर कनाडा की राजधानी मॉन्ट्रियल में एक ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय समझौता हुआ । इस समझौते पर भारत, ब्राजील एवं चीन को छोड़कर विश्व के 24 औद्योगिक रूप से विकसित राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए। इस समझौते के अनुसार ये देश सी.एफ.सी. वर्ग के रसायनों के उपयोग एवं उत्पादन में निरन्तर कमी करते रहेंगे एवं सन् 1999 तक रसायनों के उत्पादन में 30 प्रतिशत की कमी लायेगें।

भारत, ब्राजील एवं चीन सहित अन्य विकासशील देशों ने उपर्यक्त समझौते को मानने से इन्कार कर दिया । इनकी दलील है कि विकासशील देश इस रसायन के उत्पादन में मात्र 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत के ही भागीदार है, जब कि वर्तमान संकट विकसित देशों के अति उत्पादन के कारण उत्पन्न हुआ है। अतः विकासशील देश इस समझौते के तभी मानेंगे जब विकसित देश विकासशील देशों को इसके समतुल्य रसायनों के निर्माण में आर्थिक सहायता देना स्वीकार करें तथा इसके लिए एक वित्तीय कोष की स्थापना करें ।

5 से 7 मार्च 1989 लंदन में ओजेन बचाओ सम्मेलन हुआ, जिसमें 118 देशों के प्रतिनिधियोंने भाग लिया । इस सम्मेलन में भी 1987 के मोंट्रियल समझौते को अमल में लाने की बात दुहराई गयी है।

साथ ही साथ अन्य कारणों, जिनसे ओजोन आकाश क्षतिग्रस्त हो रहा है, के निराकरण के उपायों की चर्चा की गयी। ऐसी तकनीक विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया, जिससे वायुमण्डल में नाइट्रिक एवं क्लोरीन ऑक्साईड जैसी घातक गैस न बन पाये । वृक्षों की कटनी रोकने एवँ नए वृक्ष लगाने पर भी बल दिया गया ।

मार्च 1990 में हेलोसिंकी में विश्व पर्यावरण सम्मेलन हुआ, जिसका मुख्य विषय ओजोन बचाओ ही था । इस सम्मेलन में भी ओजोन कवच की सुरक्षा हेतु कारगर कदम उठाये जाने सम्बन्धी अनेक प्रस्ताव पारित किए गए।

जून, 1992 में ब्राजील में राजधानी हिमाडीबेनो में सम्पन्न हुए पृथ्वी शिखर सम्मेलन में भी ग्रीन हाउस प्रभाव के साथ-साथ ओजोन आवरण के विनाश से सम्बन्धी समस्या पर विषम विचार-विमर्श हुआ और सी.एफ.सी. के विश्वव्यापी उत्पादन पर रोक लगाने संबंधी प्रस्ताव पारित किये गए।

किन्तु ओजोन कवच की सुरक्षा मात्र सम्मेलन आयोजित करने एवं प्रस्ताव पारित कर देने से ही नहीं हो जायेगी, बल्कि इन प्रस्तावों को अमल में लाना होगा। इसके लिए सबसे आवश्यक है कि हम उन आवश्यताओं को कम करें जिन में सी.एफ.सी. गैस का प्रयोग होता है। अन्यथा वह दिन दूर नहीं, जब समूचा ओजोन कवच विनष्ट हो जायेगा और हम अपना विनाश अपनी आँखों के सामने ही देखते रह जायेंगे ।

लेखकों से निवेदन

''वैज्ञानिक'' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखे :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी ।

- संपादक

प्रतिरक्षण प्रक्रियाओं का कोशकीय नियमन ☆

डॉ. कृष्णा सैनीस
प्रतिरक्षण विज्ञान अनुभाग,
कोशकीय जीव विज्ञान प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई-400 085

परिचय

डॉ. सैनीस भा.प.अ. केंद्र के कोशकीय जीव विज्ञान प्रभाग में प्रतिरक्षण अनुभाग के अध्यक्ष हैं । आपने नागपुर विश्वविद्यालय से 1968 में बी.एससी. तथा पुणें विश्वविद्यालय से 1970 जीव रसायन विज्ञान में एम. एससी. की । भा. प. अ. केंद्र के प्रशिक्षण विद्यालय के प्रथम बॉयोलॉजी-रेडियो बायॉलॉजी कोर्स (1971-72) में भाभा पुरस्कार प्राप्त किया । तब से आप प्रतिरक्षण विज्ञान में अनुसंधान कर रहे हैं । 1980 में पुणे विश्वविद्यालय से आपने बायोफिजिक्स में पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की । आपने लंदन (इग्लैण्ड) में एक वर्ष (1978-79) और बोस्टन (अमेरिका) में 2 वर्ष (1985-87) अनुसंधान कार्य किया है । 1981 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने युवा वैज्ञानिक पुरस्कार तथा सी.एस.आइ.आर. ने 1994 में चिकित्सा विज्ञान में भटनागर पुरस्कार से आपको सम्मानित किया।

हमारे शरीर की प्रतिरक्षण प्रणाली (Immune System) जंतु विरोधी क्षमता प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाती है । लेकिन इस व्यवस्था का यह केवल एकमात्र कार्य नही है। साथ ही साथ इन्हें यह भी सुनिश्चित करना पड़ता है कि स्व घटकों के विरुद्ध प्रतिपिंड (antibody) या अन्य किसी रूप में प्रतिरक्षण निर्माण न हो । इसलिये समूचे प्रतिरक्षण प्रणाली का सही नियमन होना आवश्यक है ।

सामान्यतः प्रतिरक्षण प्रक्रिया का घटनाक्रम कुछ इस प्रकार होता है : सर्व प्रथम हमारे शरीर में प्रवेश पाने वाले परतत्व या प्रतिजनों की पहिचान, तत्पश्चात प्रतिजन विशिष्ट लसिका कोशिकाओं (Lymphocytes) का उद्दीपन, साहचर्य और विभाजन तथा अंत में लसिका कोशिकाओं के विभेदन से प्रतिजन विशिष्ट प्रतिपिंडों का उत्पादन या प्रभावी लासिका कोशिकायें - जैसे मारक कोशिका (Cytotoxic T-Cells) विलंबित अतिसुग्राहक कोशिका (Delayed hypersensitivity effector cells) आदि का निर्माण । साथ ही साथ स्मृति कोशिकाओं का निर्माण होता है जो प्रतिजन के पुनर्संपर्क से शीघ्र और अधिक मात्रा में प्रतिरक्षण निर्माण करने में सहायक होती है ।

प्रतिरक्षण प्रणाली के कोशिकाओं में काम का बंटवारा होता है । जैसे थायमस विभेदित टी लसिका कोशिकाएं केवल प्रोटीन प्रतिजनों को ही पहचानती हैं और वह भी सीधे नही । पहले बड़े प्रोटीन अणुओं का संसाधन होता है । यह कार्य एन्टीजन-प्रेजेंटिंग कोशिका करती है । फलस्वरूप इन प्रतिजनों को प्रमुख उतक अनुकूल प्रतिजनों (MHC) के साथ संयुक्त रूप से प्रतिजन-विशिष्ट टी कोशिकाओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । ये टी कोशिकाएं इनके पृष्ठभाग पर स्थित ग्राही (संवेदक) अणुओं के माध्यम से इन संयुक्तों को पहिचानती है। पहचान करने वाले संवेदक और अन्य सह उद्दीपक अणुओं का उनके विशिष्ट लिगेण्ड के साथ संपर्क होने पर ये कोशिकाएं उद्दीपित होती हैं और ऐसे प्रोटीनों को बनाती हैं जिन्हें इन्टरल्यूकिनस् कहते हैं। इनमें से इन्टरल्यूकिन-2 द्वारा टी कोशिकाओं का विभाजन और वृद्धि होती है। उधर इन्टरल्यूकिन-4 (IL-4) इस वृद्धिजनक तत्व से बी लसिका (अस्थिमज्जा में विभेदित) कोशिकाओं का प्रतिजन विशिष्ट रूपसे उद्दीपन होता है । अंत में

☆ *वर्ष 1994 के चिकित्सा विज्ञान में भटनागर पुरस्कार से सम्मानित कार्य पर आधारित*

विभेदन के बाद प्लाजमा कोशिकाओं के रूप में बी कोशिकाएं प्रतिपिंड प्रोटीनों का निर्माण करती है। (चित्र-1)

टी कोशिकाओं के विपरीत बी कोशिकाओं का अभिज्ञान तंत्र होता है । वे किसी रसायनिक प्रतिजन की सीधे जानकारी/पहचान के लिए सक्षम होती हैं। यह कार्य उनके पृष्ठभाग पर स्थित प्रतिपिंड ग्राही करते हैं । केवल बी कोशिकाएं ही प्रतिपिंड बनाने में सक्षम

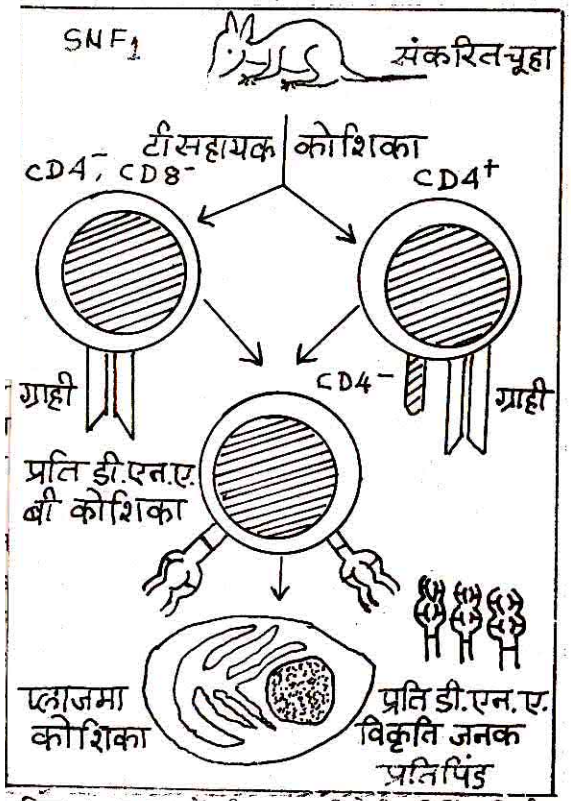

चित्र-1 : लूपस में डी.एन.ए. विरोधी प्रतिपिंड निर्माण

होती हैं ।

परतत्वों को पहचानने वाले टी कोशिकाओं के उपसमूह होते हैं । प्रमुखतः दो प्रकार के व्यक्त प्ररूपी (Phenotypic) उपसमूहों में लगभग 95-98 प्रतिशत क्रोशिकाएं होती हैं । ये व्यक्त प्ररूप टी कोशिकाओं के पृष्ठभाग पर CD4 या CD8 शर्कराबद्ध प्रोटीन (glycoprotein) अणुओं से संबंधित होते है ।

इन प्ररूपों का संबंध, जिन वर्ग के उतक अनुकूल प्रतिजनों के संलग्न रूप में प्रतिजनों का अभिज्ञान होता है, उनसे है । CD4+ टी कोशिकाएं MHC-Class II और CD8+ टी कोशिकाऐं MHC-Class I की सहायता से अन्य प्रोटीन (पेप्टाईड) प्रतिजनों की पहचान करती है ।

कार्य स्तर पर टी कोशिकाओं का सहायक, दमन (नियामक) तथा कोशिकानाशक कोशिकाओं में वर्गीकरण किया जाता है । व्यक्त प्ररूप का ऐसे कार्य से संबंध लगाना प्रायः संभव नही होता । लेकिन अनेक प्रयोगों में CD8+ कोशिकाओं को नियमन या प्रतिरक्षण उन्मूलन क्रिया में सक्रिय पाया गया है । वे CD4+ टी कोशिकायें तथा बी कोशिकाओं के कार्य को अवरोधित करती हैं ।

इन दो व्यक्त प्ररूपी उपसमूहों के अलावा अत्यन्त कम मात्रा में ऐसी टी कोशिकाएं होती हैं जिनके तल पर न तो CD4 और न CD8 की उपस्थिति रहती है । इन CD4 एवं CD8 टी कोशिकाओं की रचना और कार्य का अध्ययन पिछले 8-10 वर्षों से प्रतिरक्षण वैज्ञानिकों के लिये प्रमुख आकर्षण का विषय रहा है ।

इस लेख के प्रारंभ में यह बताया गया है, कि स्वयंविरोधी प्रतिरक्षण सामान्यतः निर्माण नही होता हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्वः प्रतिजनों को पहचानने वाली अधिकांश टी कोशिकाएं थाइमस में और बी कोशिकाएं अस्थिमज्जा में नष्ट होती हैं। अगर कुछ स्वप्रतिकारी कोशिकाएं इस प्रक्रिया से बच निकलती हैं तो उन्हें किसी न किसी तरीके से अकर्मण्य (Anergic) कर दिया जाता है । लेकिन इतने कठोर नियमन के बावजूद भी कुछ स्वप्रतिकारी कोशिकाएं इस नियमन में बाधा या असंतुलन आने से उद्दीपित होती हैं । परिणाम स्वरूप कुछ आत्म प्रतिरक्षण संबंधित बीमारियां जन्म लेती हैं । चिकित्सा वैज्ञानिकों के लिए इनकी नियमन प्रणाली की सही जानकारी और उन पर काबू पाने के उपायों की खोज एक चुनौती है।

हम अनेक आत्मप्रतिरक्षी बीमारियों से परिचित हैं - जैसे रुमेटाईड संधिशोथ (Rheumatoid Arthritis), हाशिमोटो का अवटुशोथ (Hashimoto's thyroiditis), प्रणाशी अरक्तता (Pernicious anaemia), बहुसृत काठिन्य (multiple sclerosis) और सर्वदेहिक रक्तिम लूपस (Systemic Lupus erythematosus) । इन रोगों में अलग अलग स्वघटकों के विरुद्ध प्रतिरक्षण निर्माण होता है - जैसे लूपस में डी.एन.ए. और केंद्रक विरोधी, रुमेटाईड संधिशोथ में इम्युनोग्लोब्युलिन विरोधी, बहुसृत काठिन्य में मायेलिन बेसिक प्रोटीन विरोधी प्रतिरक्षण । इन रोगों का अध्ययन चूहे या गिनी पिग्ज की सहायता से किया जाता है।

मैंने सन 1985-87 के दौरान बॉस्टन (अमेरिका) स्थित टफ्टस् विश्वविद्यालय के न्यू इंग्लैंड मेडिकल सेंटर में प्रो. श्यामल दत्त के साथ लूपस वृकशोथ आत्मप्रतिरक्षी रोग की नियमन क्रिया का अध्ययन चूहों में किया । ये चूहे संकरित जाति (F1 Hybrids) के थे । स्त्री चूहों में मनुष्य के समान इस रोग का प्रभाव ज्यादा होता है । डी.एन.ए. और उनके प्रतिपिंड के काम्पलेक्स गुर्दे में निक्षेपित होने से वहाँ शोथ पैदा करते हैं, जिसे वृक्क शोथ (Nephritis) कहते हैं । मूत्र में प्रोटीन की बढ़ी मात्रा से इसका पता चलता है ।

यह जानना जरूरी था कि डी.एन.ए. विरोधी अनुक्रिया का नियमन कैसे होता है । इसके लिए लूपसग्रस्त चूहों के टी कोशिकाओं को बी कोशिकाओं के साथ अंतः पात्र (in vitro) कल्चर किया गया। फिर सहायक कोशिकाओं के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के हेतु उनमें से $CD4^+$, $CD8^+$ और $CD4^-$, $CD8^-$ टी कोशिकाओं को अलग किया गया। ये बी लसिका की कितनी सहायता करने में सक्षम हैं, इसका परीक्षण भी किया गया । कल्चर द्रव में उपस्थित डी.एन.ए. विरोधी प्रतिपिंडों की मात्रा निर्धारण से पता चला कि न केवल $CD4^+$ बल्कि $CD4^-$, $CD8^-$ टि कोशिकायें भी डी.एन.ए. विरोधी प्रतिपिंडों के निर्माण में बी कोशिकाओं की सहायता करती है। इन प्रतिपिंडों में उस जाति के प्रतिपिंड भी थे जो अक्सर वृक शोथ ग्रस्त चूहों के वृक्क में पाये जाते थे । ये धनायनी विकृति जनक प्रतिपिंड होते हैं ।

विस्तृत अध्ययन के लिये इन $CD4^+$ और $CD4^-$, $CD8^-$ टी कोशिकाओं की वंश (कोशावंश Cell lines) को अंतः पात्र संवृद्ध करने का प्रयास किया गया । एक वर्ष के अथक परिश्रम के बाद हम ऐसे 10 कोशावंश संवृद्ध करने मे सफल रहे। आत्मप्रतिरक्षी व्याधिग्रस्त प्राणियों से इस तरह की $CD4^-$, $CD8^-$ कोशिकावंश की वृद्धि करने का यह सर्वप्रथम प्रयास रहा। ऐसी कोशिकाओं के मदद से दोहरी श्रृंखला वाली डी.एन.ए. के विरुद्ध धनायनी विकृतिजनक प्रतिपिंड में बडी मात्रा में वृद्धि हुई ।

दिलचस्प बात यह थी कि इन $CD4^-$, $CD8^-$ टी कोशिकाओं का उद्दीपन केवल संकरित चूहों में ही हुआ । स्वप्रतिकारी $CD4^+$ और $CD4^-$, $CD8^-$ टी कोशिकाएं प्रतिबंधित क्लोन्स थीं । सवाल अब यह उठता था कि इन टी कोशिकाओं पर किस प्रकार के ग्राही अणु होते हैं ? डॉ. शारलीन अडम्स् के साथ किये शोध से यह पता चला कि इन कोशिकाओं पर टी ग्राही के वे अणु थे जिन्हें धारण करने वाली कोशिकाओं को तो थाईमस में ही नष्ट हो जाना चाहिये था । यह स्पष्ट हुआ कि ऐसी प्रतिबंधित कोशिकाएं असंतुलन के कारण कठोर नियमन से बच गयी । फिर भी अब तक यह स्पष्ट नही हो पाया कि इन $CD4^-$, $CD8^-$ टी कोशिकाओं को डी.एन.ए. या तत्संलग्न पेप्टाईड प्रतिजनों की पहचान कैसे होती है, इस प्रकार लूपस वृक शोथ की नियमन प्रक्रिया समझने में यह एक उल्लेखनीय योगदान रहा है । प्रतिरक्षण नियमन का एक और पहलू का भी हमने अध्ययन किया ।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रतिरक्षण अनुक्रिया की मात्रा जंतु अथवा प्रतिजनों के शरीर प्रवेश के मार्ग पर निर्भर होती हैं। इस मौलिक मान्यता की जांच करने का कार्य हाफकिन इन्स्टिट्यूट बम्बई के डॉ. रमेश कामत के ग्रुप के साथ किया गया ।

यह पाया गया है कि यदि जंतु पर्युदर्या (Peritonal Cavity) में प्रथम प्रवेश करें तो प्रतिरक्षण की मात्रा प्राय: कम होगी और अगर वही जन्तु अवत्वचीय मार्ग से प्रवेश पाता है तो प्रतिरक्षण की मात्रा काफी ज्यादा होती है । जंतुओं की संख्या पर यह मात्रा निर्भर होती है । इस मार्ग संबन्धित प्रतिरक्षण नियमन के कारणों का शोध इसलिए महत्वपूर्ण है कि कुष्ठरोग या टी.बी. जैसे रोगों से प्रभावित व्यक्तियों में एक प्रकार का प्रतिरक्षण स्पेक्ट्रम पाया जाता है । देहद्रवी (Humoral) प्रतिरक्षण और कोशकीय प्रतिरक्षण में व्युत्क्रमानुपाती संबंध देखने को मिलता हैं । यह संभव था कि इसका संबंध जन्तुओंके प्रवेश मार्ग से हो ।

इस अध्ययन के लिए कवक जीवाणु (mycobacteria) विरोधी प्रतिरक्षण क्रिया का चयन किया गया । अगर ऊष्मा निष्क्रियीकृत (heat inactivated) जीवाणु को पर्युदर्या के मार्ग से चूहों मे इन्जेक्ट किया जाए तो $CD8^+$ टी कोशिकाएं उद्दीपित होती हैं । इन $CD8^+$ कोशिकाओं में यह क्षमता थी की वे $CD4^+$ टी कोशिकाओं द्वारा विलम्बित अति सुग्राहकता अनुक्रिया (DTH) का दमन करती। लेकिन यह $CD8^+$ टी कोशिकाएं स्वः MHC-Class II के साथ जैवाण्विक प्रतिजनों को पहनानती थीं जब कि प्रायः $CD8^+$ टी कोशिकाएं स्वः MHC-Class I के रूप में प्रतिजनों का पहचानती हैं । DTH अनुक्रिया में $CD4^+$ टी कोशिकाओं के प्रतिजिन को पहचानने के पश्चात अनेक शोथजनक पदार्थों का निर्माण होता है । साथ ही साथ प्रतिजन के पुनर्प्रवेश के स्थान पर अन्य श्वेत कोशिकाएं आकर्षित होती हैं । $CD4^+$ टी कोशिकाओं के वृद्धि के लिये IL-2 नामक प्रोटीन की जरुरत पडती है । इसी प्रकार $CD8^+$ कोशिकाएं भी IL-2 पर निर्भर रहती हैं (चित्र-2)।

डॉ. स्मिता खेतान के साथ किये इन प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ कि पर्युदर्या में कवक-जीवाणु के प्रवेश से उद्दीपित हुई $CD8^+$ टी कोशिकाएं $CD4^+$ टी कोशिकाओं से IL-2 को प्राप्त करने के लिए स्पर्धा करती हैं । फलस्वरूप $CD4^+$ टी कोशिकाओं की वृद्धि और उनका कार्य IL-2 के अभाव से रुकता है । कवक जैवाण्विक प्रतिरक्षण जनक प्रतिजन 65KDa प्रोटीन के विरोधी प्रतिरक्षण दमन न केवल कवक जीवाणु उत्तेजित $CD8^+$ टी कोशिकाओं से

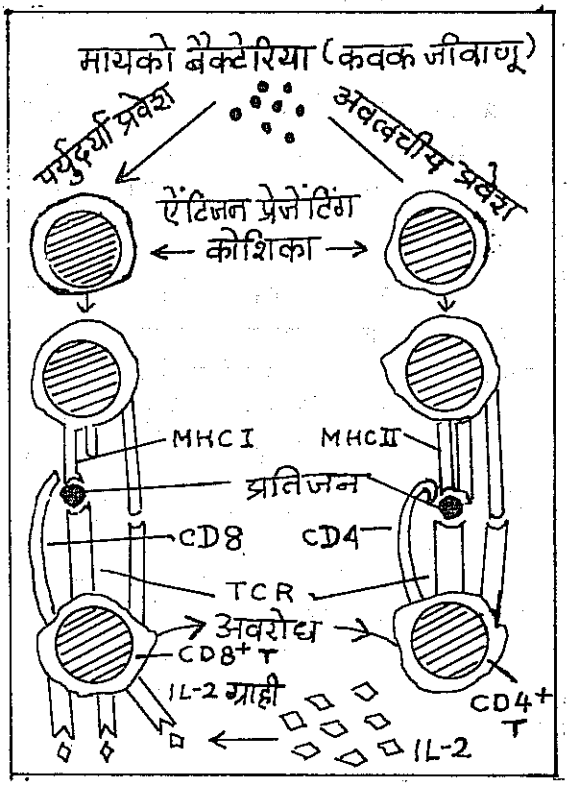

चित्र-2 : कवक जीवाणु विरोधी प्रतिरक्षण का नियमन

बल्कि दूसरे जाति के चूहे के MHC-Class I द्वारा उत्तेजित $CD8^+$ टी कोशिकाओं से भी होता है । इसके अलावा $CD8^+$ कोशिकाएं दो विभिन्न MHC - Class II अणुओं को पहचानने की क्षमता रखती थीं । प्रतिरक्षण अनुसंधान से संबंधित कुछ बुनियादी विषयों को समझने का यह प्रयास भी काफी महत्व का रहा ।

प्रतिरक्षण विज्ञान गत 2-3 दशकों में एक स्वतंत्र विज्ञानशाखा के रूप में उभर आया है । इससे संबंधित प्रक्रियाएं अब धीरे धीरे स्पष्ट हो रही हैं । जीवविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान की सीमा पर खड़ा यह विषय चुनौतियों से भरा है ।

पशु आहार में खनिजों का महत्त्व

डॉ. अनिल कुमार शर्मा
पशुचिकित्साधिकारी, द्वाराहाट,
अल्मोड़ा 263 653 (उ. प्र.)

प्राणी-शरीर के समुचित पोषण के लिए उसके आहार में कुछ अनिवार्य तत्वों का समावेश होना आवश्यक है। तत्त्वों की आवश्यक मात्रा के आधार पर इन्हें मैक्रो या माइक्रो (अति सूक्ष्म) श्रेणियों में रखा जाता है। पशुओं के आहार में भी इन तत्त्वों की अनिवार्य भूमिका है ।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का विशेष महत्त्व है । सफल पशुपालन व्यवसाय में पशुओं के लिए पर्याप्त पोषण का होना आवश्यक है। हर श्रेणी के पशुओं (बोझ ढोने वाले/दुग्ध उत्पादन करने वाले/जोतने वाले) को नियमित रूप से आहार/चारे में खनिज लवणों की आवश्यकता होती है ताकि पशु अपने स्वामी (पशुपालक) के लिए अधिकतम लाभप्रद सिद्ध हो सके। डेयरी उद्योग में लगे व्यक्तियों तथा पशुपालकों को पशु पोषण की उचित जानकारी होनी चाहिए क्योंकि सभी पशुपालक/कृषक यह चाहते हैं कि उनके पशु स्वस्थ व सक्षम हों । पशु शरीर की जैविक क्रियाओं के सुचारु रूप से संचालन हेतु पशु आहार में 2 प्रतिशत खनिज मिश्रण मिलाते हैं जो अनेक उपापचयी व एन्जाइम रूपी क्रियाओं में भाग लेते हैं ।

लगभग 40 खनिज तत्त्वों में से कॉपर, फास्फोरस, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, क्लोरीन, मॉलीबेडेनम, आयरन, सल्फर, आयोडीन, मैंगनीज, कोबाल्ट, जिंक, फ्लोरीन, क्रोमियम, सेलेनियम अति आवश्यक खनिज तत्त्व है । खनिज तत्त्वों को पशु शरीर में उपस्थित सान्द्रता के आधार पर माइक्रो व मेक्रो खनिज तत्त्वों में विभाजित किया गया है ।

अनुसंधानों से सिद्ध हुआ है कि पंजाब, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान व तामिलनाडू की कृषि योग्य भूमि में जिंक की कमी है अतः वहाँ पर उगने वाली चारा फसलों में भी जिंक की कमी होगी और उस स्थान विशेष पर पाले गये पशुओं में भी जिंक की कमी होगी जो पशुओं की सामान्य वृद्धि, दक्षता, स्वास्थ को भी प्रभारित करेगी । ऐसे पशुओं को अलग से जिंक समृद्ध खनिज मिश्रण देना पड़ेगा । इसी प्रकार गुजरात व तामिलनाडू की मिट्टी में कॉपर की कमी हैं । पंजाब की मिट्टी में आयरन की कमी हैं। उड़ीसा, बिहार व पश्चिमी बंगाल में औद्योगिक और मैंगनीज संयन्त्रों के आस-पास की कृषि योग्य भूमि में फ्लोरीन की अधिकता है तथा ऐसे पशु फ्लोरोसिस से पीड़ित हो जाते हैं । विभिन्न प्रमुख खनिज तत्त्वों की पशु शरीर में उपयोगिता निम्न प्रकार है।

मैक्रो खनिज तत्त्व :

कैल्शियम : पशु शरीर उपापचय क्रियाओं में कैल्शियम व फास्फोरस सम्मिलित रूप से अत्यन्त उपयोगी हैं । कैल्शियम की कमी से छोटे पशुओं में रिकेट्स तथा बड़ों में ओस्टोमेलेशिया हो जाता है जिससे हड्डियाँ कमजोर व जल्दी टूट जाती हैं। कैल्शियम पशु शरीर के विभिन्न अंगों जैसे हड्डियों तथा दातों को मजबूत व ताकतवर बनाता है । कैल्शियम, सोडियम और पोटेशियम के सन्तुलन से हृदय का फैलाव तथा संकुचन होता है। चोट लगने पर खून का थक्का बनने व तंत्रिकाओं को सुदृढ रखने में कैल्शियम की उपयोगिता है । पशु के रक्त में कैल्शियम की मात्रा सामान्यतय 8-12 मिलीग्राम प्रति

100 मिलीलीटर होती है । दुधारु पशुओं में ब्याने के बाद कैल्शियम की कमी से प्रसूति ज्वर (मिल्क फीवर) हो जाता है । कैल्शियम की कमी को पूरा करने के लिए पशुओं को बोन मील, फिश मील देना चाहिए।

फास्फोरस : यह कैल्शियम के साथ मिलकर पशु शरीर में हड्डियों, दांतों को निर्माण करता है तथा अनेक जैविक एन्जाइन क्रियाओं, शकर्रा उपापचय आदि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व आवश्यक अंग है। पशु रक्त में इसकी मात्रा 35-40 मि.ग्रा. प्रति 100 मिली. होती है । पशु आहार में फास्फोरस की कमी से पशुओं में भूख कम हो जाती है जिसे 'पाइका' कहते हैं । ऐसे पशु लकड़ी, हड्डी व अन्य निकृष्ट पदार्थ चबाते रहते हैं । पशुओं में अनेक प्रजनन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, हड्डियों के जोड़ कमजोर हो जाते हैं तथा वृद्धि रुक जाती है।

चावल, गेहूं के आटे की भूसी में फास्फोरस की अधिकता होती है जबकि दलहनी चारों में फास्फोरस की कमी होती है ।

मैगनीशियम : पशु रक्त में इसकी मात्रा सामान्यतः 2-5 मिग्रा. प्रति 100 मिली. होती है। इसकी कमी से पशुओं में 'टिटेनी' हो जाती है तथा पशु चिड़चिड़ा हो जाता है ओर टेढ़ा-मेढ़ा चलता है। यह कारबोहाइड्रेट उपापचय तथा विभिन्न एन्जाइन सम्बन्धित जैव रासायनिक क्रियाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । भारत में उगने वाले चारों में इसकी मात्रा 0.1% तक होती है अतः यहां पर पशुओं में सामान्यतः इसकी कमी नहीं होती ।

सोडियम : यह शरीर के जैव द्रव्यों में रहने के कारण अम्ल-क्षार सन्तुलन परासरण दाब तथा मांस पेशियों को सुदृढ़ बनाता है । इसकी कमी से पशुओं की वृद्धि कम हो जाती है तथा प्रोटीन और ऊर्जा का पशु शरीर में उपयोग कम हो जाता है पशु को भूख कम लगती है, दुग्ध उत्पादन कम तथा प्रजनन सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। साधारण नमक खिलाने से सोडियम की कमी दूर की जा सकती है ।

पोटेशियम : इसकी कमी से कारबोहाइड्रेट मेटाबोलिज्म प्रभावित होती है, मांस पेशियों तथा तंत्रिकाओं का संकुचन व फैलाव कम होता है तथा हृदय की मासपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं ।

क्लोराइड : यह सोडियम के साथ मिलकर पशु शरीर की विभिन्न जैविक क्रियाओं में भाग लेता है। साधारण नमक खिलाने पर इसकी कमी दूर हो जाती है ।

ट्रेस (माइक्रो) खनिज तत्त्व :

आयरन : यह रक्त में पाये जाने वाले पिगमैन्ट हीमोग्लोबिन का भाग है जो आक्सीजन का वाहक है। आयरण विभिन्न जैविक/एन्जाइम क्रियाओं में भाग लेता है इसकी कमी से 'एनीमिया' हो जाता है । पशु वृद्धि रुक जाती है । शुकरों में पिंगलैट एनीमिया बहुत सामान्य बीमारी है जो आयरन की कमी से होती है । शुकरों को प्रतिदिन 15 मि.ग्रा. आयरन की आवश्यकता होती है। हरे चारे में आयरन की अधिकता होती है ।

कॉपर : यह पशु शरीर की जैविक एन्जाइम को-एन्जाइम क्रियाओं का आवश्यक अंग है । हीमोग्लोबिन निर्माण में आयरन के उपयोग सम्बन्धी क्रियाओं में कॉपर की अहम भूमिका है । मॉलिबेडेनम की अधिकता में कॉपर उपयोग प्रभावित होता है । इसकी कमी से पशुओं में एनीमिया, वृद्धि का रुक जाना, हड्डियों के निर्माण में विकृति, बाल, ऊन के रंग के विकार असामान्य ऊन वृद्धि, छोटे पशुओं में दस्त आना, प्रजनन क्षमता तथा दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। गाय-भैसों को प्रतिदिन 50 मिलीग्राम कॉपर प्रतिदिन आवश्यक होता है । भेड़ को प्रतिदिन 5 मि. ग्रा. कॉपर चाहिये। सान्द्रित पशु आहार में कॉपर की पर्याप्त मात्रा होती है ।

कोबाल्ट : आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में इसकी कमी से पशुओं (गाय, भेड़) में 'कोस्ट रोग' 'एन्जुरिक

मेरासमस', 'वेस्टिंग रोग', 'पिनिंग' आदि हो जाते हैं। ऐसे पशु को भूख कम लगती है, शरीर कमजोर, त्वचा भद्दी, प्रजनन विकार तथा एनीमिया हो जाता है । कोबाल्ट, विटामिन-बी-12 का अंग है और एन्जाइम क्रियाओं, एमीनो एसिड संश्लेषण में भाग लेता है । पशु आहार के सामान्य चारों में कोबाल्ट की पर्याप्त मात्रा रहती है ।

आयोडीन : यह थॉयराइड ग्रन्थि द्वारा स्रावित हारमोन थाईरॉक्सिन का भाग होने के कारण शारीरिक क्रियाओं तथा वृद्धि को नियन्त्रित करता है, इसकी कमी से शरीर वृद्धि रुक जाती है, बालों का झड़ना शुरू हो जाता है । इसकी कमी से पशुओं में 'ग्वाइटर' (हाइपोथाइराडिज्म) हो जाता है, प्रजनन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते हैं । गोभी खिलाने से आयोडीन शोषण रुक जाता है तथा पशुओं में 'ग्वाइटर' हो जाता है, फिश मील, तथा समुद्री खरपतवार में पर्याप्त मात्रा में आयोडीन पाया जाता हैं।

मैंगनीज : यह अनेक एन्जाइन क्रियाओं, शारीरिक वृद्धि हड्डी निर्माण प्रजनन अंगो के उचित विकास व कार्य प्रणाली में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । इसकी कमी से मादा पशुओं में गर्भपात हो जाता है मुर्गियों में 'स्लिप्ड टेन्डन' नामक बीमारी हो जाती है । हरे चारों में पर्याप्त मात्रा में मैंगनीज पाया जाता है।

जिंक : यह विभिन्न एन्जाइम क्रियाओं में भाग लेता है । चारों, चावल की भूसी आदि में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । इसकी कमी से पशु वृद्धि कम, हड्डियों में अनियमितताएं, त्वचा, सम्बधी रोग, बालों का मोटा होना, खाद्य पदार्थों के उपयोग की क्षमता कम होना, पशु का देर से गर्मी में आना, हो जाता है । शुकरों में इसकी कमी से पराकिरेटोसिस हो जाता है ।

मॉलिबेडेनम : यह विभिन्न एन्जाइम क्रियाओं का अंग है। सामान्यतः इसकी चारों में कमी नहीं होती। इसकी अधिकता से मॉलबेडेनोसिस नामक रोग हो जाता है। जिसके कारण गाय/भैंसों में लगातार दस्त, पशु-भार में कमी, दुग्ध-उत्पादन में कमी परिलक्षित होती है ।

सेलेनियम : पशु शरीर की सामान्य उपापचयी क्रियाओं में 'विटामिन-ई' के साथ इसकी आवश्यतकता होती है । इसकी कमी से भेड़ो में 'व्हाइट मसलरोग', 'क्रोनिक दस्त' हो जाते हैं। सेलेनियम की अधिकता से अमेरिका में पशुओं में 'एलकैली रोग' तथा 'ब्लान्ड स्टैगर' होता है तथा पंजाब में पशुओं में 'डेलजाला रोग' भी सेलेनियम की अधिकता (सेलेनियम विषाक्ति) के कारण होता है ।

फ्लोरीन : बहुत कम मात्रा में पशु शरीर में फ्लोरीन की आवश्यकता होती है । इसकी कमी से पशुओं में 'डेन्टल कैरीज' रोग हो जाता है ।

फ्लोरीन अधिक देने से पशुओं में फ्लोरीन विषाक्ति (फ्लोरोसिस) भी हो जाती है जिससे दातों में गड्डे बन जाते हैं तथा जोड़ो में असामान्यताएं आने लगती है।

क्षय रोग एवं धार्मिक विश्वास

स्वामी प्रसाद
राजकीय स्नातक महाविद्यालय,
कोटद्वार (उ.प्र.)
डॉ. जसवंत नाग
पं.जे.एन. कालेज, बांदा (उ.प्र.)

प्राचीन काल में चिकित्सा विधान धार्मिक पृष्ठ भूमि से निहित प्रायः पण्डे पुजारी एवं तान्त्रिकों के हाथ में था । पर आज जब ज्ञान विज्ञान का अद्भुत विकास हुआ है क्या हमारी चिकित्सा विधान की मान्यता वास्तव में बदली है ? इसी विषय पर क्षय रोग के सन्दर्भ में एक चर्चा प्रस्तुत है ।

रोगों के परिवर्तित सम्प्रतय द्वारा आज प्रत्येक समाज और निकित्सा विज्ञान के प्रयोगात्मक पक्ष, प्रभावित हुए हैं । रोगों का प्रारम्भिक सिद्धान्त आध्यात्मिक, धार्मिक एवं जादुई यथार्थ की पृष्ठ भूमि में निहित था । जो आज भी प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है । रोगों के निदान का प्रारम्भिक सम्प्रत्यय बुराइयाँ, शरीर द्वारा किय गये बुरे कार्यो या आध्यात्मिक आत्माओं के उत्पीडन से सम्बन्धित माना जाता था। इसके निदान के लिए धार्मिक पुरोहितों तथा मंदिरों के पुजारियों को ही सक्षम माना जाता था । इस प्रकार दैहिक आपदाओं या रोगों के निदान के लिए धार्मिक क्रियाकलाप, विभिन्न संस्कार एवं झाड़ फूक की परम्परा रही है ।

लेकिन वर्तमान निकित्सा विज्ञान के विकास के परिणाम स्वरूप रोगों के उपचार की विभिन्न विधियां विकसित हो गई हैं । रोगों का उपचार धार्मिक पुरोहित, मंदिर के पुजारियों के द्वारा न कराके उन लोगों से कराया जाने लगा, जिन्हें शरीर विज्ञान का ज्ञान एवं प्रयोगात्मक परीक्षण की योग्यता प्राप्त है ।

जैवकीय एवं निकित्सा विज्ञान के विकास से रोगों के प्रकारों को समझाने एवं निदान करने में सहायता प्राप्त हुई है । चिरकालिक रोग, अल्पकालिक रोग एवं मनोविकृति सम्बन्धित रोगों को भिन्न-भिन्न श्रेणी में विभक्त कर उनके उपचार की व्यवस्था होने लगी। प्रायः पहले यह माना जाता था कि रोग की मात्रा जैवकीय आधार है। अर्थात मनुष्य के शरीर में किसी प्रकार की कुसंमजन रोग का द्योतक है । लेकिन वर्तमान समय में अनेक चिकित्सकीय अनुसंधानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि रोग का कारण केवल जैवकीय ही नहीं, अपितु सामाजिक वातावरण, सामाजिक संगठन एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से भी संबन्धित है ।

चिरकालिक रोगों में क्षय रोग एक विशिष्ट प्रकार का रोग माना जाता रहा है महा चिकित्सक 'हिप्पोक्रेट्स' ने इसे पिता शिश नाम दिया था । इसकी असाध्यता को देखते हुये इसे 'कैप्टन आफ दी मैने आफ डेथ्ा' और 'ग्रेट व्हाइट प्लेग' जैसे नामों से विभूषित किया गया। यह रोग "रियुबरकल बैसलाई" नाम के विषाणु के द्वारा उत्पन्न होता है। यह विषाणु दुर्बल फेफड़ों में अपना घर बना लेता है। जिससे यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग के फैलने के अनेक कारण चिकित्सकों ने बताये हैं जिसमें वंशगत दोष, पुरानी खाँसी, कुक्फफ्स में गुटिका दोष, फैफड़ों की धमनी में खून के थक्के अटकना, बार बार सर्दी होना, गन्दी और भीड़ वाले स्थानों पर रहना, बहुत ज्यादा धातु क्षय, शराब पीना, रात में जागरण करना आदि कारण है। यह रोग छूत की बीमारी मानी जाती हैं अर्थात संवाहन के द्वारा दूसरे को यह रोग लगने की संभावना रहती है। प्रारम्भ में यह माना जाता रहा है कि यह एक राज रोग हैं जो व्यक्ति के मृत्यु

के साथ ही जाता है। लेकिन 1950 में दिल्ली में विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर आयोजित एक गोष्ठी में विचार प्रगट किये गये कि इस (क्षय रोग) का उपचार प्रारम्भिक अवस्था से ही किया जाये। इस रोग से सम्बन्धित भिन्न भिन्न कारणों की चर्चा भिन्न प्रकार से की गयी । आयु, लिंग, धर्म, व्यवसाय, वैवाहित स्थिति, मद्यपान, आहार, आवास प्रदूषण वंशानुक्रमण आर्थिक विवरण एवं धार्मिक विवरण आदि हैं । भारतीय संदर्भ में इस रोग के पनपने के कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं कुछ समुदायों में एक ही बरतन में हर दूसरे का जूठा खाना खाना, एक ही बीड़ी, सिगरेट को आपस में पीना आदि सामान्य आदतें। इसे पारस्परिक सम्बन्धों में वृद्धि का प्रतीत मानते हैं परन्तु इससे क्षय रोग के बढ़ने की सम्भावना बनी रहती है।

वर्तमान समय में क्षय रोग के निदान के लिए सामाजित कारकों पर विशेष बल दिया जाने लगा है । चिकित्सकीय सुविधा प्रदान कराने के साथ-साथ रोगियों के सामाजिक परिवेश में बदलाव लाने की प्रेरणा भी दी जाने लगी है। यह माना जाने लगा है कि यह एक शारीरिक ही नहीं सामाजिक बीमारी है। इस दृष्टि से इसके सामाजिक उपचार की आवश्यकता प्रतीत होती है । अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि क्षय रोग पर आयु, लिंग, जाति एवं आर्थिक विषमता, व्यवसाय सम्बन्धि कारकों का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। जेई पार्क (1983) एवं डा.सी. संवाड ने क्षय रोग अधिक पनपने की उम्र 40-45 वर्ष बतायी है। विभिन्न अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि क्षय रोग महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है । शराब एवं अन्य मादक द्रव्यों के व्यसन के कारण निम्न जातियों में क्षय रोग अधिक पाया जाता है। जेई पार्क ने स्पष्ट किया कि रोग अधिकांश डाक्टरों एवं नर्सों में और चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों में अधिक पाया जाता है । ये लोग बार-बार क्षय रोग के सम्पर्क में आते रहते हैं। अध्ययनों में यह भी पाया गया कि जो लोग दैनिक मजदूरी करते है उनमें यह रोग अधिक पाया जाता है। इसी प्रकार से धुम्रपान का भी क्षय रोग के साथ सम्बन्ध दिखलायी पड़ता है।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि प्रारम्भिक काल से रोगों के निदान में धार्मिक कारकों का विशेष महत्व रहा है इसे दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तुत अध्ययन कर्ताओं ने जिला क्षय नियन्त्रण केन्द्र कानपुर में बाह्य रोगी विभाग में आये हुये 100 रोगियों का, देह निर्देश के आधार पर जो प्रथम बार दृष्टव्य हुए, साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से अध्ययन किया गया जिसमें उनसे रोग की उत्पत्ति के कारणों उपचार की विधि उनके सामाजिक परिवेश, आर्थिक स्थिति एवं धार्मिक आस्था संबंधी प्रश्न पूछे गये । अध्ययन कर्ताओं की यह मान्यता रही की ऐसे चिरकालिक रोगियों पर धार्मिक विश्वासों एवं आध्यात्मिकता का अब अधिक प्रभाव होता है। इस मान्यता को जानने का प्रयास प्रस्तुत लेखन में किया जा रहा है अध्ययन कर्ताओं ने इस सम्बन्ध में अपने समस्त उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया कि उनके इस रोग निदान में ईश्वर पर विश्वास रखने से एवं धार्मिक क्रिया कलापों से क्षय रोग मुक्त हो जाने की सम्भावना है इस सम्बन्ध में उन्होने तीन प्रकार के मत व्यक्त किये, कुछ ने इसमें विश्वास जताया, कुछ को इसमें विश्वास नहीं था, कुछ इस प्रश्न पर स्पष्ट उत्तर नहीं दे सके। इन समस्त उत्तर दाताओं को हमने चार श्रेणीयों में विभक्त किया जिसका आधार रोग की अवधि था ।

तालिका - ईश्वर में विश्वास एवं धार्मिक क्रिया कलापों में रोग के निदान में दृष्टिकोण -

रोग की अवधि वर्ष	विश्वास	अविश्वास	कुछ भी नहीं कह सकता	योग
1	36	18	10	64
3	05	07	05	17
5	07	01	01	09
दीर्घ कालीन	07	01	02	10
	55	27	18	100

(शेष भाग पृष्ठ 50 पर)

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों?

संघनित पदार्थ अध्ययन में न्यूट्रॉन प्रकीर्णन तकनीक का महत्त्व

डॉ. आदित्य प्रसाद रॉय,
अध्यक्ष, स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रभाग.
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई - 400 085

भौतिकी में 1994 के नोबेल पुरस्कार की सूचना देते हुए विज्ञान की रॉयल स्वीडश अकादमी (RSAS) ने जो प्रपत्र (हैंड-आउट) निकाला उसके अनुसार संघनित पदार्थ के अध्ययन के लिए न्यूट्रॉन प्रकीर्णन तकनीक के विकास में अग्रणीय योगदान के लिए पुरस्कार का आधा भाग कैनाडा के मैकमास्टर विश्वविद्यालय में काम करने वाले प्रो. बर्ट्राम एन. ब्रॉक हाउस को न्यूट्रॉन स्पेक्ट्रोस्कोपी के विकास के लिए और आधा भाग एम आई टी (MIT) अमेरिका में कार्यरत प्रो. क्लीफोर्ड जी. शल को न्यूट्रॉन विवर्तन तकनीक के विकास के लिए प्रदान किया गया है । इसी प्रपत्र में आगे कहा गया हैं कि क्लीफोर्ड शल ने तो इस प्रश्न का उत्तर खोजने में मदद की है कि परमाणु 'कहाँ' रहते हैं और बर्ट्राम ब्रॉक हाउस ने यह बताने की कोशिश की है कि परमाणु 'क्या' करते हैं ।

ट्राम्बे के न्यूट्रॉन प्रकीर्णन ग्रुप के लिए यह एक विशेष प्रसन्नता की बात है कि यहां के कई वैज्ञानिकों को प्रो. ब्रॉक हाउस के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ । डॉ. अयंगार ने सन् 1957 में चाक रिवर में ब्रॉक हाउस के साथ काम किया था और उसके बाद डॉ. के.आर. राव और डॉ. बी.ए. दासण्णाचार्य ने भी उनके साथ काम किया । जब मैं सन् 1966 उनके साथ काम करने गया तब तक वे मैकमास्टर विश्वविद्यालय हैमिल्टन में भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में काम करने लगे थे ।

यह उल्लेखनीय है कि 1946 जब शल ओक रिज राष्ट्रीय प्रयोगशाला में एर्नी वोलन के शोध ग्रुप में सम्मिलित हुये तो उन दिनों वहां पर एक्सरे प्रकीर्णन की सहायता से गैसों तथा ठोसों में इलेक्ट्रॉन घनत्व वितरण संबंधित अध्ययन चल रहे थे । यहां ओक रिज ग्रेफाइट रिएक्टर में अनुसंधान हेतु कुछ एकल अक्षीय न्यूट्रॉन स्पेक्ट्रोमीटर तथा फर्मी चॉपर थे । शल,

डॉ. बर्ट्राम ब्रॉक हाउस का जन्म 1918 में हुआ था । आपने 1935 में हाईस्कूल करने के बाद वैंकूवर (कैनाडा) और शिकागो (अमेरिका) में रेडियो मरम्मत का काम किया । युद्ध के दौरान आपने रॉयल कैनेडियन नेवी में इलेक्ट्रॉनिक्स टेक्निशीयन का काम किया । बाद में 1947 में उन्होंने ब्रिटिश कोलंबिया विश्व विद्यालय से स्नातक और 1950 में पीएच.डी. की उपाधियां प्राप्त कीं। इसी वर्ष ब्रॉक हाउस चाक रिवर स्थित कैनाडा की परमाणु ऊर्जा कंपनी (AECL) से जुड़ गये और डी.जी. हर्स्ट के साथ मिलकर न्यूट्रॉन प्रकीर्णन पर अपना शोध किया। इस समय वे मैकमास्टर विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे हैं ।

प्रो. क्लीफोर्ड ग्लेनवुड शल का जन्म 1915 में हुआ । उन्होंनें कार्नेजी मेलन विश्व-विद्यालय से 1937 में स्नातक की डिग्री ली और फिर आगे की पढ़ाई के लिए न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय चले गये । इस दौरान वे ध्रुवित इलेक्ट्रॉन प्रकीर्णन पर काम करते रहे जबकि उनका पीएच.डी. का कार्य वैन-डी-ग्राफ जनित्र के निर्माण से संबंधित था। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान शल टैक्सास कंपनी और 1946 में क्लिन्टन प्रयोगशाला (ओक रिज राष्ट्रीय प्रयोगशाला) से संबद्ध हो गये । आजकल आप एम.आई.टी. मे कार्य कर रहे हैं ।

वोलन तथा उनके सहयोगियों नें इन स्पेक्ट्रोमीटरों में कुछ विशेष सुधार करने के बाद न्यूट्रॉनों के संबद्ध (Coherent) प्रकीर्णन का अध्ययन प्रारंभ किया । इन वैज्ञानिकों द्वारा 1948 में प्रयुक्त न्यूट्रॉन विवर्तनमापी का रेखाचित्र चित्र-1 में दर्शाया गया है ।

हाइड्रोजन परमाणु कहाँ होते हैं ?

सभी जैविक पदार्थों में आमतौर पर हाइड्रोजन पाया जाता है । तकनीकी रूप से महत्वपूर्ण अकार्बनिक पदार्थों में भी यह अनेक रूपों में मिलता हैं । पहले की क्ष-किरण विवर्तन विधियां (जिसके लिए वॉन लाओ और ब्रैग्स पिता-पुत्र दोनों को 1914-1915 में नोबेल पुरस्कार मिला था) इन संरचनाओं में हाइड्रोजन की स्थिति का पता लगाने में असमर्थ थीं क्योंकि हाइड्रोजन परमाणु से क्ष-किरण विकिरण का बहुत कम प्रकीर्णन होता है । इसका कारण हाइड्रोजन में मात्र एक इलेक्ट्रॉन का होना है । इसके विपरीत हाइड्रोजन नाभिक जिसमें एक प्रोटान होता है न्यूट्रॉन प्रकीर्णन के लिए एक अच्छे केंद्र के रूप में काम करता है और इस कारण से न्यूट्रॉन विवर्तन द्वारा हाइड्रोजन परमाणु की स्थिति

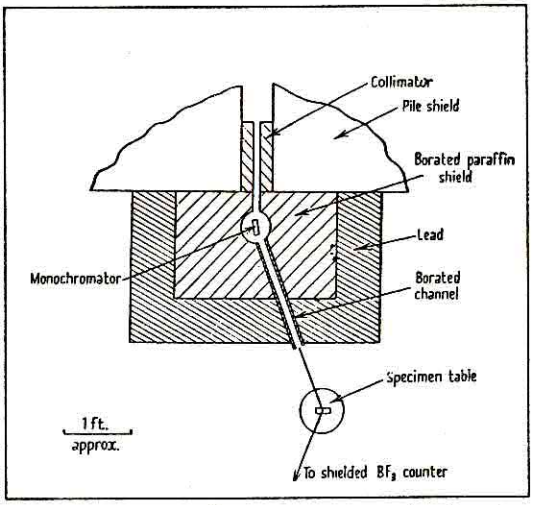

चित्र-1: शल तथा वोलन द्वारा 1948 में ओक रिज रिएक्टर में प्रयुक्त न्यूट्रॉन विवर्तनमापी

अच्छी तरह निर्धारित की जा सकती है । अपने सफल प्रयोगों द्वारा शल ने एक विस्तृत क्षेत्र के द्वार खोल दिये क्योंकि इस तकनीक द्वारा हाइड्रोजन की स्थिति का पता बर्फ, धात्वीय हाइड्राइट्स और कार्बनिक यौगिकों में आसानी से लगाया जा सकता था।

चुंबकीय संरचना : पदार्थ के परमाणुओं की तरह ही न्यूट्रॉन भी छोटे-छोटे चुंबकों जैसे ही काम करते हैं । जब किसी पदार्थ पर न्यूट्रॉन पुंज पड़ती है तो न्यूट्रॉन पदार्थ के परमाणुओं से पारस्परिक क्रिया करते हैं । इससे न्यूट्रॉनों की दिशा में परिवर्तन आ जाता है और एक नये तरह के न्यूट्रॉन विवर्तन पैटर्न मिलते हैं । इस विवर्तन का अध्ययन करके परमाणु चुंबकों के तुलनात्मक विन्यास का पता लगाया जा सकता हैं । चित्र-2 में शल द्वारा 1951 में प्रस्तावित MnO की चुम्बकीय संरचना दिखायी गयी है ।

यहां भी क्ष-किरण विधियाँ काम में नहीं आती और यही कारण है कि न्यूट्रॉन विवर्तन का प्रयोग

बहुत ज्यादा होने लगा हैं । आज न्यूट्रॉन विवर्तन अध्ययन के बिना चुंबक संबंधी अनुसंधान करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

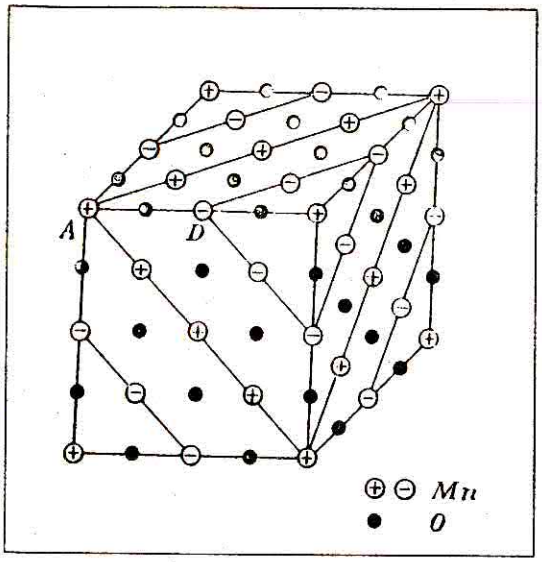

चित्र-2 : शल द्वारा 1951 में प्रस्तावित MnO की चुंबकीय संरचना

एक नयी शुरुआत : जिन दिनों प्रो. शल प्रत्यास्थ्य प्रकीर्णित न्यूट्रॉनों के विवर्तनों के आधार पर न्यूट्रॉन प्रकीर्णन तकनीक का विकास कर रहे थे, उन्हीं दिनों कैनडा में चाक रिवर अनुसंधान रिएक्टर में ब्रॉक हाउस मुख्य रूप से अप्रत्यास्थ्य प्रकीर्णन पर अपना ध्यान केंद्रित किये हुए थे । उन्होंने त्रि-अक्षीय स्पेक्ट्रोमीटर को आकल्पित किया और प्रकीर्णन विधियां विकसित कीं । इस कार्य को करने के लिए न्यूट्रॉनों के गुणों की बहुत अच्छी जानकारी होनी चाहिए और साथ ही होनी चाहिए बढ़िया सूझबूझ । ब्रॉक हाउस के योगदान के कारण ही अप्रत्यास्थ्य न्यूट्रॉन प्रकीर्णन घनावस्था पदार्थ भौतिकी में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उपयोग होने लगा । इस संदर्भ में न्यूट्रॉन के प्रकीर्णन गुण एक बार फिर अनोखे साबित होते हैं क्योंकि उनकी ऊर्जा और ठोस और द्रव पदार्थ के फोनॉनों की ऊर्जा लगभग एक जैसी ही होती हैं।

ब्रॉकहाउस ने एलेक स्टुवार्ट के साथ मिलकर सन 1955 में अल्यूमिनियम के एकल क्रिस्टल में पहली बार फोनॉन प्रसरण वक्र प्राप्त किये थे । उन्होंने बताया कि न्यूट्रॉन फोनॉन निकायों में मात्र दो संरक्षित (Conservation) समीकरण फोनॉन आवृति और फोनॉन तरंग-सदिश के आपसी संबंध को दर्शाने के लिए पर्याप्त होते हैं । इस प्रयोग द्वारा त्रि-अक्षीय न्यूट्रॉन स्पेक्ट्रोमीटर, जो NRU रिएक्टर में स्थापित किया गया था, की सामर्थ्य अच्छी तरह पता लग चुकी थी और बाद में जहां कहीं भी रिएक्टर संबंधी अनुसंधान में अप्रत्यास्थ्य न्यूट्रॉन प्रकीर्णन अध्ययन किये गये इस स्पेक्ट्रोमीटर का उपयोग अनिवार्य-सा हो गया (चित्र-3)।

आगामी कई सालों में, ब्रॉक हाउस ने अनेक वैज्ञानिकों के साथ सहयोग करके, फोनॉन और मैग्नॉन के कई महत्त्वपूर्ण एवं अनोखे पहलुओं और द्रव स्पेक्टोस्कोपी के क्षेत्र में बहुत से मापन सर्व प्रथम प्राप्त किये ।

ब्रॉकहाउस और अयंगार द्वारा जर्मेनियम के ऊपर किये गये फोनॉन प्रसरण संबंधित अध्ययनों ने कई भौतिक वैज्ञानिकों का ध्यान इस क्षेत्र की ओर आकर्षित किया।

सैद्धांतिक गणनाओं के आधार पर, वाल्टर कोहन ने प्रस्तावित किया था कि धातुओं में फर्मी सतह की तीक्ष्णता (Sharpness) के कारण व्युत्क्रम अवकाश (reciprocal space) में किन्हीं स्थानों पर प्रसरण वक्र की प्रवणता (slope) अनंत हो जानी चाहिए और फोनॉन के प्रसरण संबंधन में फर्मी सतह का एक प्रतिबिंब दिखना चाहिए । इस प्रकार की असामान्यता को पहली बार 1961 में ब्रॉकहाउस, राव और वुड ने स्पष्ट तरीके से 100K पर सीसे (Pb) में देखा (चित्र-4)।

ब्रॉकहाउस ने चुंबकीय निकायों के उत्सर्जनों का भी अध्ययन किया । उनके द्वारा प्राप्त इस तरह का पहला परिणाम मैगनेटाइट के सिंगल क्रिस्टल से संबंधित

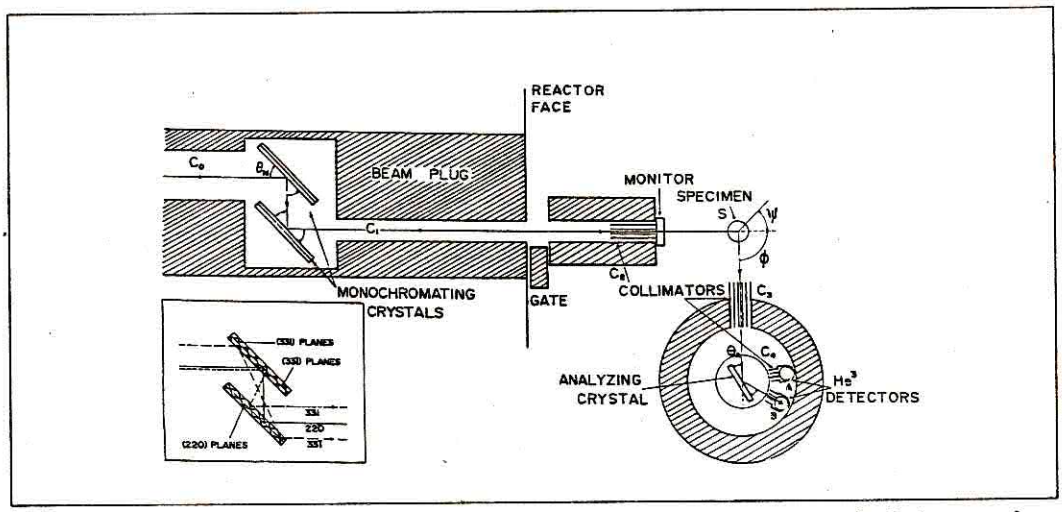

चित्र-3 : प्रो. ब्रॉकहाउस द्वारा 1967 में NRU रिएक्टर में लगाए गए त्रिअक्षीय स्पेक्ट्रोमीटर का रेखाचित्र

था जिसमें अप्रत्यास्थ्य प्रकीर्णन अध्ययनों के माध्यम से उन्होंने दर्शाया था कि ऊर्जा-तरंग सदिश संबंधन से संकेत मिलता है कि सामान्य तापक्रम पर भी मैग्नेटाइट में तरंग जैसे आध्राम उत्सर्जन ही होते रहते हैं ।

अक्रमित गमन : सन 1950 में एल.वेन.होव ने द्रव और 'पिघले हुए पदार्थों' के अक्रमित (non-ordered) गमन के लिए, एक सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि समय बीतने के साथ परमाणुओं के कुछ विन्यासों की स्मृति (या पहचान) धूमिल पड़ती जाती है । परमाणु संरचना में समय के साथ आये इन परिवर्तनों को न्यूट्रॉनों के माध्यम से जाना जा सकता हैं । ब्रॉक हाउस ने प्रयोग द्वारा पहली बार दर्शाया कि न्यूट्रॉन प्रकीर्णन के प्रयोगों द्वारा किस तरह इस प्रकार के सहसंबंधनों या 'स्मृति' फलनों को पानी और भारी पानी व अन्य कुछ पदार्थों में निर्धारित किया जा सकता हैं। ब्रॉक हाउस द्वारा द्रव सीसे के साथ किये गये प्रयोगों ने भी एक मॉडेल प्रस्तुत किया जिसका उपयोग आगे के वैज्ञानिकों ने भी किया ।

न्यूट्रॉन प्रकीर्णन तकनीक ने संघनित पदार्थ के अति सूक्ष्म गुणों को उजागर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । इसके लिए हम प्रो. शल तथा प्रो. ब्रॉकहाउस जैसे महान वैज्ञानिकों के कृतज्ञ हैं ।

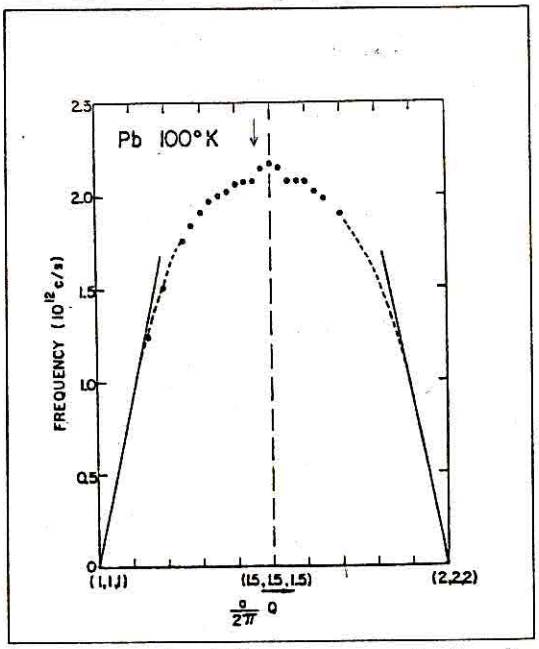

चित्र-4 : Pb के फोनॉन प्रसरण वक्र में तीर कोन (Kohn) असंगति को दर्शाता है ।

इस लेख को तैयार करने में अनुवाद/रुपान्तरण के दौरान डॉ. माधव सक्सेना से मिली सहायता के लिए मैं उनका आभारी हूँ ।

टिप्पणियां

1. जीवाणु खाद-कितनी उपयोगी?

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां की 75 प्रतिशत जनता जीवकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर रहती है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ अनाज की समस्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे में सीमित भूमि से ज्यादा पैदावार लेने के लिए किसान रासायनिक खाद का अत्यधिक प्रयोग कर रहे हैं जो कि महंगी होने के साथ-साथ पर्यावरण को भी असंतुलित कर रही है। रासायनिक खादों के बढ़ते हुए कारखाने और उनसे निकलने वाली गैसों से पर्यावरण दूषित हो रहा है ।

नाइट्रोजन पौधों के बढ़ने और अधिक उपज देने के लिए अति आवश्यक है। इसके लिए रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाता है। नाइट्रोजन खाद के रूप में कम्पोस्ट खाद की उपयोगिता बहुत सीमित है इस खाद में पोषक तत्व बहुत धीरे-धीरे एवं कम मात्रा में प्राप्त होते हैं। गांवों में गोबर का उपयोग खाद से ज्यादा कंडे बनाकर ईधन के रूप में किया जाता हैं। जीवाणु खाद रासायनिक खाद का एक विकल्प है । यदि इसका व्यापक स्तर पर उपयोग किया जाए तो दलहनी फसलों में 90-100 प्रतिशत एवं अनाज फसलों में 25 प्रतिशत रासायनिक खादों की बचत की जा सकती है। जीवाणु खाद न केवल फसलों की नाइट्रोजन की कमी को पूरा करती है वरन् इसके लगातार प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि होती है । जिन खेतों में दलहनी फसलें लंबे समय तक नहीं उगायी जाती है, उनकी उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है। दलहनी फसलों के साथ अनाज वाली फसलें उगाकर सह फसली खेती करने से रासायनिक नाइट्रोजन की 25 प्रतिशत बचत की जा सकती है।

हमारे वायु मण्डल में 80 प्रतिशत नाइट्रोजन है परन्तु इस नाइट्रोजन का प्रयोग पौधे नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह अक्रियाशील गैस के रूप में है। प्रकृति में कुछ ऐसे जीवाणु हैं जिन्हें साधारण ताप व दाब पर नाइट्रोजन खाद बनाने की क्षमता प्राप्त है, ये जीवाणु खाद बनाने के प्राकृतिक कारखाने हैं।

लैग्यूमिनोसी कुल (दहलन) के पौधों की जड़ों में छोटी छोटी गांठे पाई जाती हैं जिनमें राइजोबियम नाम के जीवाणु रहते हैं । यह जीवाणु पौधे के साथ एक सह्योगी क्रिया के अन्तर्गत मिलकर वायु मण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। यह पौधों की नाइट्रोजन की कमी को पूरा करते हैं और बदले में पौधों से भोजन और रहने का स्थान लेते हैं। राइजोबियम एक प्रजाति है व इसके अन्तर्गत कई जातियां हैं। इनमें से एक जाति अपनी ही जाति-उपजाति के दलहनी फसलों के समूह की ओर आकर्षित होकर उनकी जड़ों में प्रवेश करके गांठें बनाती हैं।

तालिका

राइजोबियम जाति	*दलहन का नाम*
राइजोबियम मैलिलोटी	मैथा, अल्फाल्फ
रा. लेग्यूमिनोसेरम	मटर, मसूर
रा. फैजिययोलायी	उड़द, मूंग, लोबिया, सेम
रा. जैपोनिकम	सोयाबीन, अरहर, मूँगफली

वायु मण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण वहीं गांठें करती हैं, जो गुलाबी रंग की होती हैं । इन गांठों में एक गुलाबी रंग का पदार्थ लैग हीमोग्लोबिन होता है जो इन गांठों को क्षमतावान बनाता है। सफेद, पीली या हरी गांठें नाइट्रोजन स्थिर नहीं कर सकती हैं। राइजोबियम के द्वारा जड़ों में गांठ बनाने और नाइट्रोजन स्थिर करने की प्रक्रिया का पता सबसे पहले 1888 में हैलरीगल और विलफार्थ को लगा था परन्तु 50-60 वर्ष उस खोज पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। जब N^{15} का प्रयोग किया गया तब ही यह सिद्ध हो सका कि गांठों में नाइट्रोजन स्थिर करने के कारखाने हैं । इस असाधारण क्षमता को पहचानकर सूक्ष्मजीव वैज्ञानिकों ने ऐसी उच्च कोटि कि जीवाणु किस्में निकाली हैं जो न केवल नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता रखती हैं। अपितु भूमि में अन्य जीवाणुओं की प्रतियोगिता

में स्वयं को जमाने में भी सक्षम है । राइजोबियन 50-200 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रति वर्ष स्थिर करने में सक्षम हैं एवं दलहनी फसलों की नाइट्रोजन की आवश्यकता को शत प्रतिशत पूरा कर सकता है। जीवाणु की नाइट्रोजन स्थिर करने की क्षमता पौधों की जाति, जीवाणु की प्रजाति पौधों के स्वास्थ्य एवं वृद्धि तथा उनमें पहले से कितनी मात्रा में नाइट्रोजन है, इस पर निर्भर करती है।

अन्य फसलों जैसे गेहूँ, जौ, मक्का, बाजरा, ज्वार, कपास, सरसों, गन्ना आदि के लिए एजोटोबैक्टर नामक जीवाणु से बनी खाद प्रयुक्त की जाती है । ये ऐसे जीवाणु हैं जिन्हें नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए पौधों के सहयोग की आवश्यकता नहीं होती । ये जीवाणु जमीन में पौधों की जड़ों के पास रहते हुए स्वतंत्र रूप से नाइट्रोजन स्थिर करते रहते हैं जिसे पौधे की जड़ें सोख लेती हैं । ये जीवाणु 20-30 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष स्थिर करने में सक्षम हैं एवं अनाज फसलों की 25 प्रतिशत नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। एजोटोबैक्टर के द्वारा नाईट्रोजन स्थिरीकरण अधिक से अधिक मात्रा में हो इसके लिए आवश्यक है कि मृदा अम्लीय न हो और उसमें नमी भी पर्याप्त हो।

एजोस्पिरिलम एक ऐसा जीवाणु है जो जड़ों के आसपास एक विशेष प्रकार का जैव मण्डल बना लेता है एवं एक विशेष प्रकिया द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है । इसे सहकारी सहजीवन कहा जाता है। यह पौधों के लिए वृद्धिकारक पदार्थ भी उत्पन्न करता है। यह जीवाणु गेहूं, जौ, बाजरा, ज्वार, जई, मक्का, धान व गन्ने के लिए उपयुक्त पाया गया है।

नीलहरित शैवाल (नीलीहरी काई) मुख्य रूप से धान के लिए उपयुक्त है। यह नाइट्रोजन स्थिरीकरण के अलावा पौधों के वृद्धि करने वाले पदार्थ भी उत्पन्न करता है जिनसे धान की फसल को बहुत अधिक लाभ मिलता है। नील हरित शैवाल के प्रयोग से धान की फसल में 15-20 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि एवं 25-30 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति फसल का लाभ मिलता है।

एजोला एक प्रकार का पानी में तैरने वाला फर्न है। इसकी पत्तियों की कोशिकीय गुहाओं में एनाबीना नामक नीलहरित शैवाल पाया जाता है जो एजोल के साथ सहयोगी सहजीवन के द्वारा वायु मण्डलीय नाइट्रोजन स्थिर करता है। एजोला कल्चर के उपयोग से धान की पैदावार में 25 से 47 प्रतिशत तक वृद्धि होती है ।

जिन खेतों में दलहनी फसल पहली बार उगाई जा रही हो वहां राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार करना अति आवश्यक होता है। अलग-अलग दलहनी फसलों के लिए अलग-अलग किस्म का राइजोबियम कल्चर होता है। एक पैकेट कल्चर 10 किग्रा. बीज के लिए पर्याप्त होता है । 50 ग्राम गुड़ अथवा चीनी को आधा लीटर पानी में घोल दिया जाता है। घोल को उबालकर ठंडा हो जाने पर इस घोल में एक पैकेट राइजोबियम कल्चर मिला दिया जाता है बाल्टी में 10 किग्रा. बीज डालकर उसपर कल्चर का घोल डालकर अच्छी तरह मिला दिया जाता है ताकि सभी बीजों पर कल्चर लग जाए । इस प्रकार राइडोबियम कल्चर से सने हुए बीजों के कुछ देर छाया में सुखा लेना चाहिए । जिस फसल में जीवाणु खाद लगाएं उसमें फास्फेट की उपयुक्त मात्रा सुपर फास्फेट के द्वारा दे । रासायनिक खाद यूरिया आमतौर से बिजाई के समय न दें ।

जीवाणु खाद के प्रयोग में सावधानियां : जीवाणु खाद का पैकेट उसी फसल के बीज में मिलाएँ जिसका उसपर नाम लिखा हो। पैकेट पर लिखी अंतिम तिथि से पहले उपचार करें । खाद के पैकेट को छाया में रखें एवं बीजशोधन के बाद छाया में सुखा। कोई भी कीट नाशक दवाई का प्रयोग यदि जरूरी हो तो पहले कर लें व सुखा लें बाद में जीवाणु खाद लगाएं।

जीवाणु खाद की उपयोगिता को देखते हुए

हरियाणा कृषि विश्व विद्यालय विभिन्न फसलों के लिए जीवाणु खाद बना रहा है । भारत सरकार ने चार जैव उर्वरक विकास केन्द्र स्थापित किए हैं जो हिसार, जबलपुर, बंगलौर व भुवनेश्वर में जीवाणु खाद का बड़े स्तर पर उत्पादन कर रहे हैं। भविष्य में जीवाणु खाद, रासायनिक खादों के प्रयोग में कमी लाने, अधिक उपज प्राप्त करने व भूमि की उर्वरा शक्ति बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी ।

डॉ. सविता गुप्ता,
सहायक प्राध्यापक,
न.दे.कृ.एवं प्रौ. वि.वि.,
कुमारगंज, फैजाबाद (उ.प्र.)

2. इम्यूनोबायोटैकनोलॉजी के बढ़ते कदम

इम्यूनोबायोटैकनोलॉजी जन्तुओं की रोगों से लड़ने की क्षमता से संबंधित विज्ञान है । पिछले 15-20 वर्षों में हुए शोध से इस क्षमता की जैव रासायनिक तथा आण्विक प्रकृति अब भली-भांती समझी जाने लगी है । इसकी सहायता से अनेक बिमारियों के टीके बनाने में मदद मिली है ।

जन्तुओं में प्रतिरक्षा तंत्र का मुख्य आधार श्वेत रुधिर कोशिकायें या लिम्पोसाइड होती है जो रुधिर के साथ पूरे शरीर में प्रवाहित होती रहती है ये कोशिकायें दो प्रकार की होती है जिनको क्रमशः बी तथा टी कोशिकाये कहा जाता है। इसमें बी कोशिकायें लिम्फोसाइड ऐंटीबॉडी बनती है जो अवांछित एंटीजन को निष्क्रिय कर देती है टी कोशिकायें प्रतिरक्षा कार्य करती है । इन दोनों तरह की कोशिकाओं का निर्माण भी कोशिकाओं के अतिरिक्त एल लिम्फोसाइट मैक्रोफाजेज तथा गेन्यूलोसाइट द्वारा भी होता है इस विशिष्ट प्रकार की ऐंटीजन के लिये एक विशिष्ट ऐंटीबॉड़ी भी होती है । मानव शरीर के अन्दर किसी भी समय लगभग 10,000 प्रकार की ऐंटीबॉड़ी मौजूद होती है परन्तु इसमें पाँच प्रकार की ऐंटीबॉड़ी बहुतायत में मिलती है । इनको इन्यूग्लोब्यलिन ''ए'' इम्यूनोग्लोव्यलिन ''डी'' इम्यूनोग्लोव्यलिन ''जी'' तथा इम्यूनोग्लोव्यलिन ''एम'' के नाम से जाना जाता है। ये सभी प्रोटीन के बने होते हैं तथा इनके साथ में कार्बोहाइड्रेट भी जुड़े होते हैं । इम्यूनोग्लोब्यलिन -जी की संरचना सबसे आसान होती है । इसमें प्रोटीन की चार इकाइयां होती हैं जिसमें दो मोटी श्रृंखला वाली तथा दो पतली श्रृंखला वाली होती हैं। प्रत्येक मोटी श्रृंखला लगभग 500 ऐमिनो अम्लों की बनी होती है । पतली श्रृंखलाओं में एमिनो अम्ल की लगभग मोटी श्रृंखला से आधी संख्या होती है । ये चारों श्रृंखलायें डाई सल्फाइड बंधों द्वारा इस प्रकार जुड़ी होती हैं कि एक वाई (Y) की आकृति के समान रचना बन जाती है। इम्यूनोग्लोब्युलिन के एक विशिष्ट हिस्से से ही ऐंटीजन जुड़ जाते हैं तथा निष्क्रिय हो जाते हैं। इम्यूनोग्लोब्यलिन में प्रोटीन के आलावा ओलिगोसेक्रेराइड कार्बोहाइड्रेट भी होते है इनका कुल अणु में प्रतिशत 3 से लेकर 13 तक हो सकता है ये प्रायः मैनोज ग्लेक्टोज एसिटाइल लैक्टोएमिन आदि के बने होते हैं ।

इम्यूनोबायोटैक्नोलाजी का टीकों के निर्माण तथा उनके उपयोग से विभिन्न बीमारियों से बचाव प्रतिरक्षा प्रौद्योगिकी में सबसे महत्वपूर्ण उपयोग है। लूई पाश्चर वे पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने 16 जुलाई 1885 को पहली बार लड़कों को इस प्रकार का टीका लगाया था। आजकल अनेक बीमारियों जैसे पोलियो, चेचक, खसरा, काली खासी, हैजा, गलघोट आदि के टीके उपलब्ध हैं । सामान्यतः टीके निम्नलिखित प्रकार के होते है;

जीवाणुओं से प्राप्त टॉक्सिन के टीके : अधिकतर व्याधिकारी जीवाणुओं से निकाले गये टॉक्सिन भी ऐंटीबॉड़ी का निर्माण सक्रिय कर देते हैं। कुछ टॉक्सिन क्षण भंगुर होते हैं तथा संचय करने पर इनकी तीव्रता धीरे-धीरे कम होने लगती है एवं टॉक्सायड में बदल जाते हैं। टॉक्सायड भी ऐंटीबॉडी

का निर्माण सक्रिय करते हैं। परन्तु वे विषैले नही रह जाते हैं। ताप फार्मोल्डिहाइड तथा अन्य रसायनों के उपयोग से टॉक्सिन का टॉक्सायड में परिवर्तन तेज किया जा सकता है । डिप्थीरिया, टिटेनस, गैंगरीन, आदि के प्रतिरक्षण में टॉक्सायड का उपयोग किया जाता है।

क्षीण तीव्रता वाले जीव से टीके : कुछ टीकों में ऐसे व्याधिकारी जीवों का उपयोग किया जाता है जिनका रोग पैदा करने वाली तीव्रता या प्रचंडता कम कर दी गई होती है। ये जीव रोग नही फैला सकते परंतु उनका शरीर के अन्दर समावेश होने पर प्रतिरक्षा तंत्र (ऐंटिबॉडी का बनना) सक्रिय हो जाते हैं इस विधि के उपयोग से रेबीज, पीतज्वर, चेचक, पोलियो आदि के टीके विकसित किये गये हैं।

मृत जीव के टीके : कुछ टीकों में मृत व्याधिकारी जीव को शरीर में प्रवेश कराया जाता है जिससे कि ऐंटीबॉडी का बनना सक्रिय हो जाता है। इस विधि से टायफॉइड व काली खांसी का निदान आसानी से किया जाता हैं ।

प्रतिरक्षी सीरम वाले टीके : प्रतिरक्षी सीरम उस व्यक्ति या जानवर के रुधिर से प्राप्त किया जाता है जिसमें ऐंटीबॉडी बनी रहती हैं । इसे प्राप्त करने के लिये सामान्यतः टॉक्सायड को किसी जानवर जैसे घोड़ा में प्रवेश कराया जाता हैं और थोड़ी देर बाद उस जानवर का थोड़ा सा रुधिर निकाल लिया जाता है । रुधिर में सीरम निकाल कर उसका टीके के रूप में उपयोग किया जाता है। डिप्थीरिया तथा टिटेनस के निदान में प्रतिरक्षी सीरम का उपयोग किया जाता है। यह विधि आजकल काफी अपनाई जा रही है।

निश्चित रासायनिक प्रकृति वाले टीके : अब अनेक ऐंटीजनों की रासायनिक रचना भलि भांति ज्ञात है । उनका निर्माण किसी जैविक या रासायनिक तरीके द्वारा किया जा सकता है। मस्तिष्क ज्वर तथा निमोनिया के टीके का निर्माण जैविक तरीके से किया जाता है जीन प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप इस तरह के टीके का निर्माण काफी होने लगा हैं।

भारत में इम्यूनोबायोटैक्नोलॉजी के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य चल रहे हैं।

डॉ. आर.एस. सेंगर
पादप कार्यिकी विभाग,
गो.ब.पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पन्तनगर (नैनीताल)

3. स्वचालन एवं रोबोटिकी

स्वचालन एवं रोबोटिकी एक दूसरे के पूरक समझे जाते हैं। किसी भी प्रणाली में स्वचालन मानवीय गलतियों की कमी करके उत्पादन बढ़ाने में सक्षम है। रोबोटिकी इसी क्रम में एक ऐसा तकनीकी विकास है जिसने स्वचालन के कार्यों के आयाम में उल्लेखनीय वृद्धि की है । रोबोट विकास मानवता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है क्योंकि यह ऐसे कार्य आसानी से कर पाता है जो साधारणतः मनुष्यों की पहुंच के बाहर होते हैं ।

रोबोट एक विद्युत-यांत्रिक विविध क्षमताओं वाला यंत्र है जो अपने कार्यक्षेत्र में विशिष्ट आदेशानुसार निर्दिष्ट काम पूरा करता है । ये आवश्यकतानुसार घनाकार, बेलनाकार अथवा गोलाकार क्षेत्र में अपने कार्य करने में सक्षम होते हैं । इसके मुख्यतः पांच घटक होते हैं, (1) भुजा, (2) भुजा को चलाने या घुमाने के लिए शक्ति यंत्र, (3) नियंत्रक, (4) संगणक तथा (5) निर्देश । उसके अलावा कुछ रोबोट में विशेष ज्ञानेन्द्रियों को भी लगा दिया जाता है जिससे कार्यक्षेत्र की जानकारी नियंत्रक को मिल सके ।

प्रयोगशाला में कार्य करने वाले रोबोट को चित्र-1 में दिखाया गया है । यह किसी पुनर्संसाधन प्लांट से प्राप्त नमूनों की जांच करने में सक्षम हैं। 300 नमूनों में से निर्दिष्ट नमूने को निकालकर, उसका ढ़क्कन खोलकर उसमें से प्रमाणिक द्रव को अलग

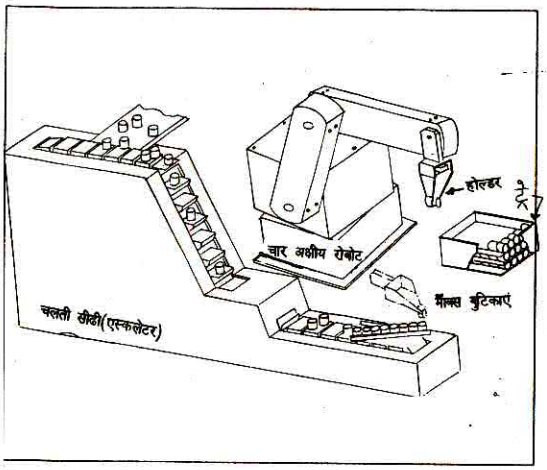

चित्र-1.

कर फिर उसमें विशेष रसायन मिलाकर उसका परीक्षण बिना किसी गलती के कम से कम समय में कर पाने में सक्षम है । एड्स जैसे भयानक रोगियों के खून की जांच करने में ऐसे रोबोटों की काफी उपयोगिता पायी गयी है।

वे क्षेत्र जहां जमीन समतल न हो, पहियों पर चलने वाले वाहनों का प्रयोग संभव नहीं हो पाता है । ऐसे क्षेत्रों के लिए गतिशील (चलते-फिरते) रोबोट का विकास हुआ है । यह 4 अथवा 6 पैरों वाली संरचना होती है । इसी क्रम में ओडोटिक्स एक 6 पैरों वाला रोबोट (मुख पृष्ठ पर प्रदर्शित) है जो अपने से 5 गुणा भार उठा सकता है । इसकी चलने की गति काफी अधिक होने के साथ साथ यह किसी भी दिशा में चल सकता है । यह सीढ़ियों पर चलकर दूसरी मंजिल तक पहुंच सकता है। कुछ खास किस्म के रोबोट दीवारों व छत पर भी चलकर कार्य कर सकते हैं । कुछ रोबोटों के पैरों के नीचे ऐसे संवेदक लगा दिए जाते है जिससे वे यथा निर्दिष्ट दिशा की ओर बढ़ कर अत्यन्त नियंत्रित रूप से कार्य कर पाते हैं ।

यूं तो रोबोटों के अनुप्रयोगों के कई क्षेत्र हैं उन सबका जिक्र यहां संभव नही है फिर भी उनमें

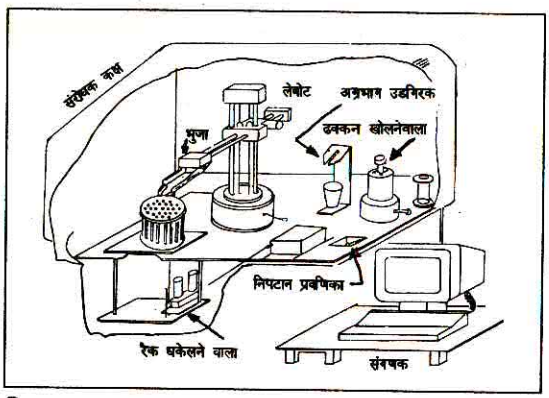

चित्र-2.

से कुछ उल्लेखनीय इस प्रकार हैं : नाभिकीय संयंत्रों और परमाणु भट्टियों जहां रेडियो सक्रिय विकिरण होने के कारण मनुष्य कार्य नही कर पाते हैं, रोबोट वहां प्रवेश कर आवश्यक मरम्मत तथा अन्य हेर-फेर के काम (मेनीपुलेशन) करते हैं । इसमें रिएक्टर के अंदर काटना, जोड़ना, वेल्डिंग किसी पुर्जे को निकालना-लगाना इत्यादि कार्य आते हैं । भा.प.अ. केन्द्र में विकसित ईंधन पुनर्संसाधन परियोजना के लिए बनाये चार अक्षीय रोबोट की चित्र-2 में प्रदर्शित किया गया है ।

औद्योगिक इकाइयों में सामान लाने-ले जाने, युद्ध क्षेत्रों में जमीन में बिछी सुरंगों का पता चलाने व हटाने, उपग्रहों का निरीक्षण एवं वहां से नमूनों को एकत्र करने के काम से लेकर रासायनिक इकाइयों एवं पानी के नीचे तक कई कार्य इनके द्वारा संभव हो पाते हैं । रोबोट जहाजों की मरम्मत, समुद्र में विस्थापित तेल की नलिकाओं का निरीक्षण और मरम्मत, नाभिकिय ईंधन अपशिष्ट को टैकों में भरने तथा उन्हें समुद्र में 20-30 मीटर नीचे स्थापित करने इत्यादि संबंधित कार्य आम बात है ।

उल्लेखनीय है कि कुछ वर्षों पूर्व एअर इण्डिया के दुर्घटनाग्रस्त विमान-कनिष्क के ब्लैक बॉक्स को लगभग 3000 मीटर की गहराई से ढूंढ़ने का काम भी रोबोट की सहायतासे संभव हो पाया ।

(शेष भाग पृष्ठ 69 पर)

बाल विज्ञान

क्यों होता है ग्रहण ?

जन सामान्य मुख्यतः दो ग्रहणों से परिचित हैं । चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण । इन ग्रहणों को घटित होने के लिए चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी की सहभागिता आवश्यक हैं । जब इनकी सहभागिता में चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण होता है तो क्या पृथ्वी या भूग्रहण नहीं होता हैं । निश्चय ही भूग्रहण भी होता हैं । इन्ही तथ्यों व कारणों पर हमें विचार करना है । पहले देखें कि चन्द्रमा क्या है तथा चन्द्र ग्रहण क्यों होता है ? वास्तव में चन्द्रमा हमारे पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह व पड़ोसी है जिसकी दूरी पृथ्वी से लगभग ढ़ाई लाख मील है । चन्द्रमा पर मानव का पर्दापण काफी पूर्व हो चुका है। वास्तव में चन्द्रमा एक ऐसा उपग्रह हैं जिस पर न तो वायुमण्डल है न जल है और न ही वनस्पतियाँ । चन्द्रमा का अपना कोई प्रकाश भी नहीं है । यह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। चन्द्रमा के प्रकाशित होने का कारण है सूर्य की किरणों का चन्द्रमा से टकरा कर परावर्तित होना । यही कारण है कि चन्द्रमा से परावर्तित होने वाली किरणें पृथ्वी पर शीतल तथा उजली चाँदनी बिखेरने वाली होती हैं तथा इन किरणों में गर्मी के बजाय शीतलता रहती है। चन्द्रमा अपनी अक्ष पर घूमता हुआ पृथ्वी का चक्कर 29¼ दिनों मे पूरा करता है। हम सभी को चन्द्रमा का सदैव एक भाग ही दिखाई पड़ता हैं क्योंकि इसका अपनी धुरी पर परिक्रमा का समय और पृथ्वी के गिर्द परिक्रमा का समय लगभग एक समान है। चन्द्रमा माह के चौदह दिनों तक सूर्य से मिलने वाली प्रकाश से तीव्र तापमान पर चमकता रहता है तथा माह के शेष दिनों में वह बेहद ठंडा और अंधकार वाला रहता है । इन शेष समय में वह जो थोड़ा बहुत चमकता रहता हैं वह पृथ्वी द्वारा परावर्तित की गयी प्रकाश से चमकता है। इसी तरह चन्द्रमा की घटते बढ़ते स्थिति अर्थात चन्द्र कलाओं की स्थिति को समझें तो ज्ञात होता है कि चन्द्रमा न तो घटता है और न ही बढ़ता है बल्कि उस पर पड़ने वाली प्रकाश की स्थितियों के कारण यह घटता-बढ़ता नजर आता है । चन्द्रमा का एक गोलार्द्ध ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है ।

जब चन्द्रमा का आधा भाग अर्थात एक गोलार्द्ध प्रकाशित होता है तो उस दिन पूर्णिमा होती है और जब यह गोलार्द्ध पूरा का पूरा भाग अंधेरे में रहता है तो उस रात हमें चन्द्रमा नहीं दिखाई पड़ता हैं। उस रात को हम अमावस्या कहते हैं । जब कभी पृथ्वी अपने पथ पर परिक्रमा करते समय सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है तो पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने लगती है और सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर पहुँचनी बन्द हो जातीं है । इस कारण चन्द्रमा धुंधला दिखाई देने लगता है और प्रकाशित नहीं हो पाता है जिसे चन्द्रग्रहण करते हैं । चन्द्रग्रहण दो प्रकार के होते हैं खंड चन्द्रग्रहण और पूर्ण चन्द्रग्रहण । जब कभी-कभी पृथ्वी की छाया, चन्द्रमा के एक ही अंश पर पड़ती है तो चन्द्रमा का कुछ भाग ही धुंधला दिखाई पड़ता है तथा शेष भाग दिखाई पड़ता है तो इसे खंड चन्द्र ग्रहण कहते हैं । इसी प्रकार जब चन्द्रमा का पूरा भाग धुंधला दिखाई पड़ता है अर्थात पूरा चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में रहता है और बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता हैं तो वह पूर्णचन्द्र ग्रहण होता

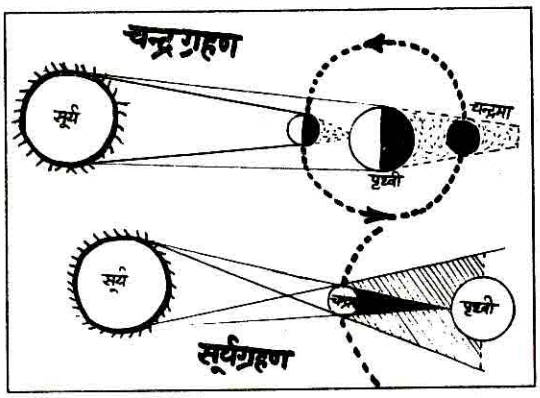

है। वास्तव में पूर्ण चन्द्र के समय भी चन्द्रमा पूर्णतः आँखों से अदृश्य नहीं होता बल्कि यह हल्का लाल ा दिखाई पड़ता है क्योंकि वायुमंडल, सूर्य की किरणों ो इस पर परावर्तित कर देती हैं । इससे उसका ुछ अंश चन्द्रमा पर पड़ता रहता हैं । चूंकि चन्द्रमा ो हमेशा ही पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है फिर ी प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण नहीं हो पाता हैं, योंकि चन्द्रमा का परिक्रमा मार्ग पृथ्वी के मार्ग से ° झुका हुआ है अर्थात इन तीनों का धरातल एक हीं होता, जिससे प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण नहीं ोता है । किसी विशेष परिस्थितियों में ही ये तीनों र्थात सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा एक सीध में आ पाते तभी पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और न्द्रग्रहण होता है । चन्द्र ग्रहण अधिकतम दो घण्टे क का होता है ।

अब सूर्य ग्रहण के कारणों व स्थितियों पर ार करें तो स्पष्ट है कि जिस तरह चन्द्रमा, पृथ्वी चारों तरफ परिक्रमा करता है उसी प्रकार पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ परिक्रमा करता है । जब चन्द्रमा रिक्रमा करते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ ाता है तो सूर्य का कुछ भाग अल्प समय के लिए दृश्य हो जाता है जिससे सूर्य ग्रहण लगता है । स्तव में सूर्य और चन्द्रमा के आकार में बहुत अंतर तथा चन्द्रमा के सूर्य को ढ़कने की बात अविश्वसनीय गती है किन्तु इनकी पृथ्वी से दूरी में भी उसी अनुपात अंतर होने के कारण, पृथ्वी से उन का आकार गभग समान दिखाई देता है । अर्थात जब चन्द्रमा, वी की परिक्रमा करते करते पृथ्वी और सूर्य के च में आ जाता है और तीनों एक ही सीध में जातें हैं तो उस समय चन्द्रमा पृथ्वी को ढक लेता जिससे पृथ्वी के कुछ भाग पर अंधेरा छा जाता जिसे सूर्यग्रहण कहते हैं । सूर्यग्रहण आमावस्या होता है । सूर्य ग्रहण भी दो प्रकार का होता । पूर्ण सूर्यग्रहण और आंशिक सूर्यग्रहण । पूर्ण ग्रहण के समय चन्द्रमा, सूर्य को लगभग पूरा ढक खाली तश्तरी जैसा आकृति बना लेता हैं तथा इसके चारों तरफ एक चमकदार छल्ला बन जाता है । किन्तु चन्द्रमा कभी भी सूर्य को पूरी तरह ढक नहीं पाता क्योंकि यह पृथ्वी से काफी दूर है तथा यह दूरी परिवर्तित भी होती रहती हैं । इसी प्रकार जब चन्द्रमा का कुछ हिस्सा ही सूरज के ठीक सामने आ पाता है तो उस समय आंशिक सूर्य ग्रहण होता है । यदि चन्द्रमा की परिक्रमा, पृथ्वी के परिक्रमा पथ के सीध में हो तो प्रत्येक महीने सूर्यग्रहण पड़ सकता हैं किन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के चारों तरफ परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा कभी तो पृथ्वी के परिक्रमा पथ से नीचे से और कभी ऊपर से निकल जाता है । पृथ्वी, सूर्य व चन्द्रमा की स्थितियों को ज्ञात करके चन्द्र ग्रहण या सूर्यग्रहण कब, कहाँ तथा कितने समय का होगा ज्ञात किया जा सकता है । सूर्य ग्रहण की अधिकतम अवधि 8 मिनट तक होती है किन्तु पूर्ण सूर्य ग्रहण की अवधि 12 मिनट 24 सेकण्ड तक की हो सकती है । सूर्य ग्रहण प्रत्येक वर्ष में दो बार और अधिक से अधिक पाँच बार हो सकता है । पृथ्वी के किसी एक हिस्से से पूर्ण सूर्य ग्रहण 360 वर्ष में एक बार ही हो सकता है।

उपरोक्त की तरह वास्तव में भूग्रहण भी होता है किन्तु भूग्रहण चन्द्रमा पर से देखा जा सकता है। यदि हम चन्द्रमा पर रहें तो निश्चय ही यथासमय भूग्रहण अवश्य ही दिखाई देगा । जिस तरह हम पृथ्वी पर रहकर सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण देख लेते हैं लेकिन भूग्रहण नहीं देख पाते । उसी प्रकार चन्द्रमा से हमें सूर्यग्रहण तथा भूग्रहण दोनों दिखाई देंगे किन्तु चन्द्रग्रहण नहीं दिखाई देगा । चूंकि चन्द्रमा तथा पृथ्वी दोनों सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । इसी प्रकार चन्द्र ग्रहण के समान ही, सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा के आ जाने से चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर अवश्य पड़ेगी जब वे एक सीध में होंगे, फलतः चन्द्रमा से पृथ्वी का जो धुंधला या छाया ग्रस्त भाग नहीं दिखाई देगा, उसे भूग्रहण कहा जा सकता है, देखा जा सकता है। यह घटना फिलहाल अभी तक देखा नहीं जा सका है किन्तु चन्द्रमा पर

से इसे यथासमय अवश्य ही देखा जा सकता है ।

क्या अत्यधिक सही लम्बाई ज्ञात करना सम्भव है ?

क्या किसी वस्तु की एकदम सही लम्बाई ज्ञात की जा सकता है । आज विज्ञान युग के उपकरणों की सहायता से उपरोक्त का उत्तर हाँ में तो दे सकते हैं किन्तु वास्तव में उक्त मापन प्रायोगिक रूप से असंभव नहीं तो अत्यधिक कठिन अवश्य ही है । आज प्रचलित अत्याधुनिक उपकरणों द्वारा भी वास्तविक लम्बाई ज्ञात करना निश्चय ही काफी कठिन है । जैसे यदि मान लें एक तार है जिसकी लम्बाई 10 सेमी. है। इस लम्बाई को सामान्य स्केल से 10 सेमी. ज्ञात कर सकते है। किन्तु यदि यही लम्बाई हम सूक्ष्ममापी उपकरणों से ज्ञात करें को यह 10+.01 या 10+ .001 सेमी तक प्राप्त हो सकती है और यदि इसे इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से ज्ञात करें तो यह मान कुछ और दशमलव अंकों तक बढ़ जायेगा किन्तु यह लम्बाई इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से टेढ़ै-मेढ़ें दिखाई देगी और उसकी वास्तविक लम्बाई ज्ञात करना अत्यन्त कठिन हो जायगा । और यदि इस सूक्ष्म सूक्ष्मीकरण युग को ध्यान में रखते हुए और अधिक छिद्रान्वेषण करें तो इस वस्तु के किनारे पर अणु एवं उसके संघटन की उपस्थिति प्राप्त होगी । ये अणु कम्पन करते हुए भी प्राप्त हो सकते हैं । ऐसी स्थिति में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है कि वास्तविक लम्बाई क्या है। इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ायें तो यदि उस वस्तु के अंतिम सिरे पर स्थित परमाणु का अवलोकन करते हुए उसका स्थान निर्धारित कर लें तो पुनः समस्या आयेगी अर्थात इस अंतिम परमाणु के चारों ओर घूमने वाले इलेक्ट्रॉन की स्थिति ज्ञात करना कठिन होगा तथा इन इलेक्ट्रॉनों को देखते हुए लाइट बैंड या फोटॉन की आवश्यकता होगी । लेकिन पुनः समस्या आसान होने के बजाय जटिल होगी क्योंकि इलेक्ट्रॉन, फोटॉन से क्रिया करके स्थिर हो जायेगी और हम जहाँ उसे पूर्व स्थिति में समझ रहे होंगे वह वास्तव में वहां होगा ही नहीं । इस प्रकार इनकी गतिशीलता को देखते हुए स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि किसी वस्तु की अत्यधिक वास्तविक व सही लम्बाई ज्ञात कर पाना असम्भव नहीं, तो काफी कठिन अवश्य है ।

विमलेश चन्द्र
WTM, माइक्रो वेव स्टेशन पालेज,
पोस्ट-पालेज, जिला-भरुच (गुजरात)-392 220

(पृष्ठ 38 का शेषभाग)

जैसा कि सारणी से स्पष्ट होता है कि दीर्घकालिक रोगी प्रारम्भिक रोगियों की तुलना में ईश्वर में अधिक विश्वास रखते हैं । उसके पीछे कुछ अन्य सामाजिक कारकों का भी प्रभाव दिखलायी पड़ता है। इस प्रश्न को हम दूसरे परिवृत्यों से यथा आयु एवं शिक्षा के आधार पर आंकलन करते हैं तो ज्ञात होता है कि जैसै - जैसे आयु बढ़ती है धार्मिकता के प्रति आस्था भी बढ़ती जाती है इस अध्ययन में 5 वर्ष एवं उससे भी ऊपर के जो रोगी है उसकी आयु भी अधिक है और प्रस्तुत सारणी से भी स्पष्ट होता है कि ऐसे रोगी ईश्वर में अधिक विश्वास करते हैं।

दूसरी ओर शिक्षा परिवृत्त को ध्यान में रखते है तो भी यह स्पष्ट होता है कि कम शिक्षितों को अर्थात इण्टर मीडियेट तक शिक्षित रोगियों में ईश्वर के प्रति विशेष आस्था है। शिक्षा वृद्धि के साथ वह इस रोग को तांत्रिक एवं वैज्ञानिक आधार पर इसके चिकित्सकीय उपचार में विश्वास रखते हैं न कि धार्मिक उपचार में ।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में हमारी अपनी मान्यता के अनुसार यह प्रमाणित होता है कि अधिकांश रोगी क्षय रोग जैसै दीर्घ कालिक रोगों में उपचार के साथ-साथ धार्मिक क्रिया कलापों एवं ईश्वर के आशीर्वाद से रोग मुक्त होने में विश्वास रखते हैं। अन्य परिकृत्यों का अपना अलग प्रभाव तो है ।

भा.प.अ.केन्द्र से

1. गामा-किरण-वर्ण क्रमी-उपस्कर :

केन्द्रीय न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला (Central Forensic Science Laboratory) कलकत्ता हेतु पदार्थों के परिक्षण के लिए 5 अक्टूबर 1994 को भा.प.अ.के. में एक गामा-किरण-वर्ण क्रमी उपस्कर स्थापित किया गया ।

भा.प.अ.के. में 1971 से न्यायालयिक-विज्ञान प्रयोगशाला कार्यरत है । सक्रियण विश्लेषण (Activation Analysis), परमाण्वीय अवशोषण स्पेक्ट्रोमिति(Atomic Absorption Spectrometry) एवं विद्युत रासायनिकी (Electrochemical) विधियों का उपयोग, सबूतों का विश्लेषण कर, अपराधों से जुड़ी समस्याओं को हल करने में किया जाता है । गोलियों/छर्रों में सीसे की मात्रा का मापन करना विभिन्न पदार्थों (जैविकी, अजैविकी व वानस्पतिक) के नमूनों में सूक्ष्म-मात्रिक तत्वों का अभिलक्षणन (Characteriation) तथा ऑविषालुता विज्ञान (Toxicology) अध्ययन में भारी तत्वों का निर्धारण आदि कार्य इसमें शामिल हैं । यह प्रयोगशाला देश की सभी न्यायालयिक प्रयोगशालाओं की विश्लेषणात्मक आवश्यकताओं को पूरा करती है । भा.प.अ.के. अब इन विशिष्ट सेवाओं को व्यावसायिक तौर पर अन्य देशों को उपलब्ध कराने पर विचार कर रहा है ।

2. नरोरा एटोमिक पावर संयंत्र पुनः क्रियाशील :

22 दिसंबर 1994 की दोपहर से नरोरा-न्यूक्लीय संस्थानों के युगल संयत्रों में से पहले संयंत्र ने ऊर्जा उत्पादन पुनः शुरु कर दिया है । 31 मार्च 1993 को टर्बो-जनरेटर में आग लगने पर यह संयंत्र अपने आप बंद हो गया था । आग लगने पर भी किसी प्रकार की जनहानि नहीं हुई थी तथा किसी प्रकार का विकिरण भी बाहर नहीं फैला था । पावर आपूर्ति करने वाली विभिन्न प्रकार की इकाईयों में आग फैल जाने से स्टेशन पूर्णतः बंद हो गया था । नये टर्बो-जनरेटर और केबलों को लगाने का काम पूरा कर लिया गया है । नये केबल अग्नि-प्रतिरोधी है। साथ ही कई स्थलों पर अग्नि-रोधक भी लगाए गये है ताकि आग लगने (यद्यपि इसकी संभावना अत्यंत कम है) पर पहले की तरह आग फैल न सके । पावर रिएक्टर की दूसरी इकाई भी, जिसे आग दुर्घटना के बाद बंद कर दिया था, कुछ परिवर्तनों के साथ पहिले ही शुरू की जा चुकी है ।

3. न्यूक्लीय गुणवत्ता के जिरकोनियम टैट्राक्लोराइड के उत्पादन की नई विधि :

जिरकोन रेत से सीधे नाभिकीय गुणवत्ता वाले निर्जल जिरकोनियम टेट्राक्लोराइड के हेतु एक कम खर्चीले जल-विहीन, उत्ताप रासायनिक (पायरो केमिकल) प्रक्रम का विकास धात्विकी प्रभाग ने किया है। यह प्रक्रम व्यावसायिक तौर पर सस्ता तथा पर्यावरणीय-सुरक्षित, स्वच्छ है । इस के कुल तीन चरण हैं : 1- जिरकोन का सीधा क्लोरीनीकरण, 2-अपरिष्कृत (क्रूड) क्लोराइड की संगलित (फ्यूज्ड) लवण द्वारा स्क्रबींग एवं, 3- निष्कर्षण आसवन विधि द्वारा पिछले लवण के घोल का प्रयोग कर, जिरकोनियम और हाफनियम का पृथक्करण ।

न्यूक्लीय ईंधन काम्पलेक्स (एन.एफ.सी.) हैदराबाद में अभी प्रयुक्त प्रक्रम के मुकाबले इस प्रक्रम के मुख्य लाभ, (अ) न्यूक्लीय ग्रेड के Zr एवं Hf की ज्यादा प्राप्ति (ब) रसायनों की कम खपत तथा (स) वातावरण-प्रदूषण से मुक्तता हैं । भा.प.अ.के.

इस प्रकम को एन.एफ.सी. को हस्तांतरित करने की प्रक्रिया में है ताकि वहां पायलेट संयंत्र लगाया जा सके ।

4. सिंटरणीय व निर्बाध-प्रवाही UO_2 पावडर का उत्पादन :

हल्के-जलीय रिएक्टरों में प्रयुक्त UO_2 ईधन-गुटिकाएं बनाने के लिए आवश्यक सिंटरणीय व निर्बाध-प्रवाही (फ्री फ्लोइंग) UO_2 पावडर को औद्योगिक स्तर पर उत्पादित करने की दृष्टि से अमोनियम यूरेनियम कार्बोनेट (ए.यू.सी.) प्रक्रम का विकास जर्मनी में किया गया है । अब भा.प.अ.के. में ए.यू.सी. पर आधारित ऐसे प्रक्रम को विकसित किया जा रहा है जिससे प्राप्त निर्बाध-प्रवाही UO_2 पावडर को सीधे ही गुटिकाओं में बदला व उन्हें सिंटरित कर अति उच्च घनत्व (76% सैद्धांतिक घनत्व) की UO_2 ईधन-गुटिकाएं प्राप्त की जा सकें ताकि इन गुटिकाओं का उपयोग भारत के दाबित भारी पानी रिएक्टरों हो ।

इस कार्य का पहला कदम रासायनिकी इंजिनियरिंग प्रभाग (रा.इ.प्र.) व रेडियो मैटलर्जी प्रभाग (रे.मै.प्र.) द्वारा मिलकर उठाया जा चुका है । 1.5 Kg. पावडर के बैचों से 93-95% घन सेमी. की गुटिकाओं का निर्माण पुनः पुनः किया गया है। रा.इ.प्र. में आवश्यक भौतिक गुणों वाले ए.यू.सी. के संविरचन के प्रक्रम-प्राचलों का इष्टतमीकरण (Optimisation) किया जा चुका है ताकि न्यूक्लीय शुद्धता के यूरेनिल नाइट्रेट घोल से 1.5 Kg. (U) प्राप्त हो से । रे.मै.प्र. में सीधे ही गुटिकायन और सिंटरण योग्य निर्बाध-प्रवाही UO_2 पावडर की 500 ग्रा. बैच से प्राप्ति हेतु ए.यू.सी. कैल्सीनेशन के प्राचलों का इष्टतमीकरण किया गया है ।

गुटिकायन और सिंटरण, 1-1.5 Kg. के बैचों में रे.मै.प्र. में किया गया है । UO_2 गुटिकओं का अधिकतम प्राप्त घनत्व, 95.5-96% घन सेमी. की परास में था ।

प्रस्तुति. **डॉ. कैलाश चन्द्र भल्ला**
रसायनिकी प्रभाग
भा.प.अ.के., बंबई 400 085

अन्य:

1. कंप्यूटर पढ़ सकता है ?

भारत तरक्की के उस बिन्दु पर जा पहुँचा है जहाँ कम से कम महानगरों और कतिपय मध्यम स्तर के नगरों में कंप्यूटर की सहायता रेल्वे बुकिंग, बैंक, डाकघर इत्यादि जगहों पर ली जाने वाली है। उसी की अगली कड़ी में एक ऐसा कंप्यूटर खोज लिया गया जो लिखावटों को भी पढ़ सकता है । इसका नाम दृष्टव्य अक्षर पहिचान (ऑप्टीकल कैरेक्टर रिकग्निशन - ओ.सी.आर.) है । फिलहाल ओ.सी.आर. केवल छपे, टाइप किए या स्पष्ट लिखे बड़े (कैपिटल) अक्षरों को हीं पढ़ सकता है ।

कंप्यूटर टेक्नालॉजी के क्षेत्र में भारत पिछले कुछ वर्षों में एक नई खोज में हुई है । अब हाथ की लिखावट को कंप्यूटर पहिचान सकता है । इस खोज को व्यापारिक क्षेत्र में बड़ी उत्सुकता से देखा गया। इस तकनीक से लिखावटों और हस्ताक्षरों को जांचा और पहचाना जा सकता है । अपराध क्षेत्र में भी धोखाधड़ी के मामलों को पकड़ने में इसका बड़ा योगदान है ।

प्रत्येक व्यक्ति की लिखावट दूसरे से भिन्न होने के कारण उसको पहचानने के कौशल को इस कंप्यूटर ने हासिल कर लिया है । प्रत्येक लिखावट के अक्षरों में तीन लक्षण होते हैं । जो अपने में वैचित्र और विभिन्नतायें लिए रहते है । ये है आरंभिक विशेषता (उपसर्ग), केंद्रीय आकृति जो अक्षर के मर्मस्थल के लक्षण दर्शाती है, और अंतिम लक्षण (अंतसर्ग) ।

इस तरह कंप्यूटरों ने अक्षरों को पहचानने की पद्धति विकसित कर ली है अब इन्हें शब्दों को पहचानने के लिए आसानी हो गई क्योंकि अक्षरों के डाटा के जरिए उन्होंने अपना ही शब्दकोष उत्पन्न किया ।

टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान (टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च) में अभी पूरी योजना प्रयोगशाला के सघन प्रयोगों से गुजर रही है । लेकिन दिल्ली की एक कंपनी ने इस काम के लिए व्यावसायिक स्तर का साधन (साफ्टवेयर) सामने ला दिया और उसका नाम रखा मायस्क्रिप्ट। इसकी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा हुई और इसे अपने किस्म का निराला माना गया ।

हाल ही पैराग्राफ नामक मास्को स्थित कंपनी ने भी इसी तरह के कंप्यूटर को बाजार में उतारा है । जिसका नाम है केलिग्राफ । इस तरह कंप्यूटर प्रयोग इतनी तेजी से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में फैल रहे हैं कि वह दिन दूर नहीं जब ऐसे कार्यालय की कल्पना की जाए, जिसमें कागजों की जरूरत ही न हो । डिबियाओं मे सारे रिकार्ड जमा कर ''मॉनीटर'' पर देख लिये जाएं ।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ऐसे सुपर कंप्यूटर को अन्वेषण हुआ और उन्हें वृहद स्तर पर उपयोग में लाया गया कि उन्होंने पूरे समाज में खलबली मचा डाली । जैसे, टेलीफोन टेपिंग को पकड़ने या सड़क पर गलत जगह कार को खड़ी करने पर उनके नंबर सुपर कंप्यूटर में डाले गए। फिर क्या था ? विशालकाय मशीन ने टेलीफोन करने वालों या कार चलाने वालों की पूरी '''जन्मकुंडली'' सामने रख दी। उसने यह भी बता दिया फलां आदमी और फलां स्त्री साथ-साथ घूमे और उन्होंने क्या-क्या किया । अब तो सारे देश में तहलका मच गया और उन्होंने इसे व्यक्तिगत जीवन पर हमला बताया । सो, विज्ञान और टेक्नॉलॉजी अमृत भी है और जहर भी ।

2. श्वेत क्रांति के लिए नये प्रयास:

दूध डेरियों और मवेशियों के बेहतर प्रबंधन के कारण देश में दुग्ध के उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति उपयोग में वृद्धि होने की संभावना है । दूध देश का दूसरे क्रम का सबसे बड़ा कृषि उत्पाद है । उसका वार्षिक कारोबार एक हजार करोड़ रुपए से भी ज्यादा का होता है । दुनिया में सबसे अधिक मवेशी लगभग 18 करोड़ गाएँ तथा 6.1 करोड़ भैंसे भारत में हैं, तथापि यहाँ प्रति प्राणी दूध का उत्पादन सबसे कम है । मसलन, भारत में एक गाय एक वर्ष में औसतन 400 लीटर दूध देती है, जबकि इसराइल में गाएँ प्रति बियात अर्थात 14 महिने में 7 हजार लीटर दूध देती है । भारत के दुग्ध उत्पादन परिदृष्य का यही पहलू सबसे ज्यादा चिंताजनक है और इसी को बेहतर प्रबन्ध के द्वारा दुरुस्त करने की जरूरत है । इसके लिए एक योजना भी बनायी गयी है ।

इसमें सर्वप्रथम मवेशियों के संकरण-संवर्द्धन से संबंधित समस्याओं और देशी नस्लों के संवर्द्धन पर ध्यान दिया जाएगा । इस उद्देश्य से देश के लगभग 1 लाख पशु चिकित्सकों तथा अर्ध चिकित्सकीय कर्मचारियों को गतिशील किया जाएगा। पशु आहार तथा दुधारु पशुओं के लिए दाना चारा वह दूसरा क्षेत्र है जिस पर ध्यान दिया जाएगा । भारत में ज्यादातर मवेशी बहुत ही घटिया किस्म के आहार, तथा अनुपयोगी रेशेदार चारे आदि पर गुजारा करते हैं। इन इलाकों तक में दुधारू पशुओं के बजाए सूखे मवेशियों को बेहतर दाना-चारा दिया जाता है। साथ ही दुग्ध उत्पादक इलाकों तक में पशु आहार बहुत ही कम मात्रा में उगाया जाता है । वर्तमान स्थिति यह है कि कुल कृषि भूमि केवल 4 प्रतिशत पशु आहार की खेती की जाती है ।

इस तरह खास कोशिश इस बात की जायगी कि बिना मवेशियों की संख्या बढ़ाए दुध उत्पादकता बढ़यी जाए । वर्तमान प्रस्तावों के अनुसार सन् 2000

तक दूध का उत्पादन बढ़ाकर 7 करोड़ टन तथा व्यक्ति उपयोग प्रतिदिन 200 ग्राम कर दिया जाएगा । इस समय प्रति व्यक्ति दूध की प्रति दिन उपलब्धता 160 ग्राम है, जो कि सन् 94 तक बढ़कर 186 ग्राम प्रति दिन हो जाएगी ।

इस कार्यक्रम का बुनियादी लक्ष्य डेयरी विकास के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार तथा आय बढ़ाना है। दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी की मदद ली जाएगी । ऑपरेशन-फ्लड की लागत कम की जाएगी तथा दूध तथा उसके उत्पादों की व्यापक उपलब्धता को सुनिश्चित किया जाएगा ।

ऑपरेशन-फ्लड के तीसरे चरण में राष्ट्रीय टेक्नॉलॉजी मिशन के सहयोग से गायों की दूध देने की औसत क्षमता 390 लीटर प्रति वर्ष से बढ़ाकर 640 लीटर कर देने की आशा है । इस अवधि में भैसों की उत्पादकता 910 लीटर से बढ़कर 1020 लीटर की जाएगी । ऑपरेशन-फ्लड के तीसरे चरण की जब 1994 में समाप्ति होगी, तब दूध संग्रहण को क्षमता 78 लाख लीटर प्रतिदिन से बढ़कर 150 लाख लीटर प्रतिदिन हो जाने की उम्मीद है तथा इससे 270 जिलों के 80 हजार अतिरिक्त गाँव लाभान्वित होंगे ।

जैसा कि बेहद सम्पन्न ऑपरेशन-फ्लड योजना के जनक डॉ. वी. कूरियन कहते है "जब लाखों भारतीय ग्रामीण उत्पादकों की शक्ति और पहले का मिलन उपयुक्त प्रबंधकीय तथा प्रौद्योगिक निवेशों के साथ होगा तो वे निश्चय ही देश की चुनौती का सामना कर सकेंगे ।" डॉ. कुरियन भारत के एक ऐसे विशेषज्ञ हैं जिन्हें भारत में श्वेत क्रांन्ति लाने में उनके योगदान के लिए विश्व खाद्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया था । उनका कहना है कि आनन्द का यह प्रयोग बहुत ही सफल रहा है तथा उसे सारे विश्व में मान्यता मिली है ।

चीन में भी ऐसी ही एक योजना बनाई गयी है । ऑपरेशन-फ्लड को ही देश में इस समय होने वाले 4.5 करोड़ टन से भी ज्यादा दुग्ध उत्पादन का श्रेय दिया जाता है, जबकि सातवें दशक के पूर्व देश में दूध का लगभग अकाल था ।

ऑपरेश-फ्लड के ही कारण उपभोक्ताओं को वाजिब दामों पर अच्छा दूध उपलब्ध करवाने में मदद मिली है । सन् 1970 में ऑपरेशन-फ्लड का जो पहला चरण शुरू किया गया था, उसका उद्देश्य देश के चार महा नगरों में दूध की कमी दूर करना था। ऑपरेशन-फ्लड प्रथम का अंत 1979 में हुआ और इसके साथ ही भारत में व्यापारिक स्तर पर दूध पावडर का आयात बंद हुआ ।

ऑपरेशन-फ्लड द्वितीय की शुरुआत सन् 80 की पहली तिमाही में हुई। इसमें 163 शहरों को शामिल कर वहाँ 139 डेयरियाँ स्थापित की गईं । इन डेयरियों के दूध की पूर्ति एक करोड़ दुग्ध उत्पादक परिवारों द्वारा की जाती थी । द्वितीय चरण खत्म होते होते देश में दूध का कुल उत्पादन बढ़कर 4.1 करोड़ टन तथा प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपयोग 147 ग्राम हो गया था ।

द्वितीय चरण का अध्ययन करने के लिए श्री. डी. के. झा की अध्यक्षता में जो समिति नियुक्त की गई थी, उसका कहना है कि उसका कियान्वयन पूरी कुशलता के साथ किया तथा इसका पूरा श्रेय राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (एन.डी.डी.बी.) को दिया जाना चाहए। ऑपरेश-फ्लड के दूसरे चरण के सामाजिक आर्थिक प्रभावों पर टिप्पणी करते हुए समिति ने कहा कि यह आलोचना ठीक नहीं है कि यह योजना के गरीबों के बच्चों से वंचित कर शहरी अमीरों को दूध पहुँचा रही है । इस योजना के प्रमुख कार्यक्षेत्र वही इलाके हैं, जहाँ से दूध परंपरागत रूप से शहरी क्षेत्रों में पहुँचता रहा है ।

ऑपरेश-फ्लड तृतीय की शुरुआत 1988 में हुई । उसका लक्ष्य दुग्ध सहकारिता समितियों के ढांचे में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना है । तीसरा चरण मुख्यतः मवेशियों को होने वाली बीमारियों को नियंत्रित करने

के लिए टीकों की नई संतति जारी करेगा तथा उत्पादकों को बीमारियों के निदान के लिए विशेष उपकरण (किटस) उपलब्ध करेगा । नयी प्रौद्योगिकी क्रमशः एक से दूसरी सहकारी समितियों को स्थानांतरित की जाएगी।

ऑपरेशन-फ्लड के आलोचकों के अनुसार इस योजना की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह अपनी सफलता के लिए योरपीय समुदाय पर स्किम्ड (मलाई सहित) दूध तथा बटर-आयल (मक्खन से बना तेल) की पूर्ति के लिए जरूरत से ज्यादा निर्भर करती है। इन आलोचकों के अनुसार दुग्ध उत्पादों के मामले में आत्म निर्भर होने के बजाए भारत योरप के देशों के आयात पर निर्भर होता जाएगा । इस संदर्भ में विश्व बैंक तथा योरपीय आयोग की एक संयुक्त रपट का कहना है कि डेयरी उत्पादों का आयात (चाहे वे दान में प्राप्त हों, समर्पित मूल्य वाले हों या व्यापारिक) को काफी घटाया या समाप्त किया जाना चाहिए । देशी भंडारों में हो रही वृद्धि को देखते हुए ये आयात उत्पादक बाजार को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करते हुए सहकारी उद्योग को क्षति पहुँचा सकते हैं ।

इस कार्यक्रम की एक अन्य कमजोरी उसका शहरी क्षेत्रों के प्रति जरूरत से ज्यादा झुका होना है। लेकिन, इस आरोप को अब तीसरे चरण में काफी हद दूर कर दिया जाएगा कि भारतीय मवेशियों का योरपीय नस्लों के साथ बहुत ज्यादा संकरण किया जा रहा है । अब देशी मवेशी प्रजनन पर ज्यादा जोर दिया जाएगा ।

कुल मिलाकर ऑपरेश-फ्लड ने देश के गोधन पशुपालक बिरादरी तथा उपभोक्ताओं को कई तरह के फायदे पहुँचाए हैं । उसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए बिना उसके मूल लक्ष्यों या संचालन दर्शन को बदले इस कार्यक्रम के कुछ उपादानों की पुनर्रचना करने की जरूरत है। ऑपरेश-फ्लड की सफलता को देखते हुए की भारत सरकार ने अब एन.डी.डी.बी. को ही देश उपभोक्ताओं में तेल बाजिब भाव से वितरित करने की जिम्मेदारी सौंपी है ।

प्रस्तुति : **के. के. पालीवाल**
आर.ए.के. कालेज आफ एग्रीकल्चर,
सिहोर-466 001

3. कीड़े ही कीड़ों के शत्रु :

जमीन के अंदर रहकर फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़े और लार्वा अब जैविक-नियंत्रण की पकड़ में आ रहे है । पालों आल्टो की एक कंपनी 'बायोसिस', स्टेनेमेमा, प्रजाति के ऐसे सूक्ष्म नेमेटोड का जनन कर रही है जो फसलों के लिए हानि रहित हैं लेकिन कीड़ों और लार्वा को नष्ट कर देते हैं। इनके संक्रमण के बाद एक या दो दिन में कीड़े मर जाते हैं। बायोसिस के प्रमुख अधिकारी डॉ. एस. वेंकट सोहोनी के अनुसार उनकी कंपनी बाजार के लिए उपयुक्त पैकेज बनाने में लगी है।

प्रस्तुति : **दु. प्र. पांडेय**

4. नाभिकीय ऊर्जा के बढ़ते चरण:

जापान एरोमिक इंडस्ट्रीयल फोरम की एक सर्वे-रिपोर्ट के अनुसार जून 1994 के अंत तक विश्व में 423 न्यूक्लीय रिएक्टर 354, 191 मेगावाट विद्युत उत्पन्न कर रहे थे। इनमें उसी साल जून तक शुरू किये गये पाँच रिएक्टरों (3-चीन, 1-जापान व 1-फ्रांस में) से जनित 4,645 मेगावाट-विद्युत भी शामिल है। रिपोर्ट के अनुसार 122 और रिएक्टर, जिनकी कुल क्षमता 103,800 MWe है, प्लानिंग और निर्माण की विभिन्न अवस्था में हैं। एशिया के कई देश, जैसे जापान, चीन, ताईवान और इंडोनेशिया आदि, अपनी भावी ऊर्जा आवश्यकता के लिए न्यूक्लीय पावर स्टेशनों के निर्माण की महत्वाकांक्षी और पक्की योजनाएं बना रहें हैं ।

प्रस्तुति : **कैलास चन्द्र भल्ला**

5. चिरायु की दिशा में नया विज्ञान शोध

आधुनिक गेरांटोलाजिस्ट वैज्ञानिकों का विश्वास है कि मनुष्य-जीवन के शरीर की स्वाभाविक (भौतिक) क्रियाओं का संचालन, जीवन पर्यन्त एक प्रकार की जैविक-घड़ी (अभौतिक) के समकालिक संपन्न होता है अतः नवजात शिशु को लगने वाली प्रथम क्षुधा के क्रियान्वयन का समय भी उसी जैविक-घड़ी से निर्धारित होना चाहिए । मानव को प्रथम-क्षुधा की प्रतीति जैविक-घड़ी के प्रारम्भिक क्रियान्वयन के प्रथम-क्षण के कुछ या बहुत से सुनिश्चित क्षणों के बाद होती हैं और बाद में उसी जैविक घड़ी के इसी प्रारम्भिक कालक्रम से बार-बार भूख लगने की चक्रात्मक प्रतीति, जीवन पर्यन्त होती रहती हैं ।

जिस समय हमें भूख लगती है उस समय हमारे शरीर की सभी भोजन प्रणालियाँ अपने अपने कार्यों की जागृत अवस्था में आ जाती हैं । भोज्य-प्रणाली से सम्बन्धित हमारे सभी अंग-प्रत्यंगों की मांस पेशियां भी अपनी अपनी विश्राम अवस्था को छोड़कर अपने अपने यथायोग्य कार्यों में जुट जाती हैं। भोजन ग्रहण करने के कितने समय (प्रहर) बाद हमारा भोज्य पदार्थ हमारी भोज्य प्रणाली के किस स्थान अथवा अंग से गुजर कर कितने समय तक किस अंग में ठहरेगा और उस मध्य हमारे कौन कौन से पाचक रस पदार्थ उसे कब कब ग्रहण करने होते हैं, यह सब भी उसी जैविक-घड़ी से सुनिश्चित रहता है ।

लेकिन, यदि हम किसी ऐसे समय (पहर) में भोजन ग्रहण करते हैं कि उस समय उसको पचाने वाले रस पदार्थ शिथिलावस्था में हों अथवा आमाशय इत्यादि की मांस पेशियां अपनी अपनी विश्रामावस्थाओं में हों, तब हमारे शरीर में उस भोज्य-पदार्थ का क्या होगा ? निश्चय ही वह अपाचित रहते हुये हमारे शरीर के संबंधित अंग-प्रत्यंगो में स्वमेव सड़ने लगेगा। जिस (सड़न) से शरीर को स्वास्थ्य की हानि हीं होती है अर्थात् हम अल्पायु को प्राप्त होते हैं ।

ऐसे में, हमारे समाज को हमारे लिए ऐसी दैनन्दिन-व्यवस्था उपलब्ध करानी है कि उस समाज से सम्बन्धित विभिन्न आर्थिक एवं अन्यान्य दैनिक क्रिया-कलापों के प्रतिदिन वा प्रतिप्रहर उस समय एक निमटा लिया जाये कि हम अपनी जैविक-घड़ी से निर्धारित समय (प्रहर) पर अपना भोजन ग्रहण कर सकें । अथवा, कहा जा सहता है कि हमारे शिशु का जन्म ऐसे प्रहर में हुआ करे कि उस प्रहर में प्रारम्भ होने वाली उसकी जैविक-घड़ी की स्थिति एवं उस शिशु का क्षुधा-प्रहर समकालित रह सके । ताकि, समाज द्वारा उपलब्ध कराये जा सके भोजनावकाश से जैविक-घड़ी द्वारा प्रस्तुत भोजनावकाश बाधित न हो ।

यदि शिशु-जन्म के क्षण से संचालन प्राप्त होने वाली जैविक-घड़ी का समय शिशुजन्म-क्षण से निर्धारित किया जा सकता है, तब तो जैविक-घड़ी द्वारा निर्धारित भोजन प्रहर एवं समाज द्वारा प्रस्तुत भोजनावकाश के प्रहर को समकालित बनाकर शिशुओं व मनुष्यों की औसत आयु को, अल्पायु से सुविधापूर्वक बचाकर, स्वाभाविक-चिरायु बनाया जा सकता है । अतः मनुष्यों को स्वाभाविक चिरायु उपलब्ध कराने हेतु उनको जन्म देने वाले मातापिता ऐसे ही प्रहर में गर्भादान क्रिया संपन्न किया करें कि उस गर्भकाल से प्राप्त शिशुओं की जैविक घड़ी द्वारा संचालित-भोजनावकाश एवं प्रचलित समाज द्वारा निर्देशित-भोजनावकाश अधिकाधिक समकालित रहा करें । इस अर्थ में, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा वैदिक संस्कारविधि से पुनर्स्थापित वैदिक गर्भादान विधि, कि रात्रि के प्रथम प्रहर पश्चात एवं रात्रि के अन्तिम प्रहर से पहले ही मनुष्यों में गर्भादान क्रिया संपन्न हो जाया करे, चिरायु प्राप्त करने की दिशा कदाचित एक समीचीन उपाय है ।

ज्ञातव्य है कि वाल्टीमोर (अमेरिका) का नेशनल इंस्टीट्यूट आफ ऐजिंग एवं अन्यान्य वैज्ञानिक गण मनुष्य को औसतन चिरायु बनाने की दिशा मे जो

प्रयोग कर रहे हैं उनमें अल्पाहार से चिरायु प्राप्त करने का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । लेकिन उन वैज्ञानिकों के अल्पाहार-प्रयोग से मनुष्य प्रायः भूखापन अनुभव करता है । अल्पाहार से भूखापन अनुभव करने की स्थिति से निवृति पाने की दिशा में हमें ऐसे ऐसे भोज्य पदार्थों को आहारस्वरूप ग्रहण करना चाहिये के उनकी एक खुराक आवश्यक कैलोरी-ऊर्जा, विटामिन, आदि, से तो पूर्ण संतुलित हो लेकिन उस खुराक की भौतिकता का आयतन पेट की भौतिक क्षमता के आयतन से कम न हो ताकि, भोज्यपदार्थों के आयतन के फैलाव के दबाव से आमाशय की मांसपेशियों का पूर्ण-खिंचाव, पाचन-प्रत्यंगों को स्वास्थ्यवर्धक व्यायाम प्रस्तुत कर सके । अतः संतुलित आहार के साथ हमें जौ का आटा जैसे भोज्य पदार्थों को भी अपने आहार में सम्मिलित करना चाहिये कि संतुलित आहार की एक समय की खुराक का भौतिक आयतन पेट की क्षमता के आयतन के अनुरूप रहे। जौ में पौष्टिक तत्वों की अपेक्षा भौतिक आयतन का आधिक्य होता है ।

प्रस्तुति : **हरिजन सोमनाथ त्यागी,**
कोट बाजार,
अमरोहा (उ.प्र.) 244 221

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद (भा.प.अ. केन्द्र)
कार्यकारिणी समिति (1993-95)

डॉ. बी.ए. दासण्णाचार्य	अध्यक्ष
श्री. एच.सी. कौरा	उपाध्यक्ष
डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा	सचिव
डॉ. विजय कुमार मनचंदा	संयुक्त सचिव
श्री. जी.डी. मित्तल	कोषाध्यक्ष
डॉ. ललित कुमार	सदस्य
डॉ. एस.पी. कुलश्रेष्ठ	,,
श्री. बी.के. शाह	,,
डॉ. ए.एन. नकरा	,,
श्री. एम.के. श्रीवास्तव	,,
श्री. जगदीश शर्मा	,,
डॉ. एस.ए. अहमद	मनोनीत सदस्य
डॉ. एम.आर. बालकृष्णन	,,
डॉ. एस.पी. गर्ग	मनोनीत सदस्य
श्री. जी.एल. गोस्वामी	,,
डॉ. ए.के. सूरी (व्यवस्थापक ''वैज्ञानिक'')	पदेन सदस्य
डॉ. जी.पी. कोठियाल (संपादक-संयोजक ''वैज्ञानिक'')	,,
डॉ. वी. रामशेष (सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति)	,,
डॉ. ए.जे. ताम्हनकर (सचिव, केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद)	,,
डॉ. राजेन्द्र स्वरुप (संयोजक राजभाषा वार्ता)	,,
श्री. काशीनाथ पाण्डेय (सहनिदेशक, राजभाषा)	,,

संगोष्ठी समाचार :

प्रगत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भा.प.अ. केन्द्र का योगदान

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में हिन्दी दिवस/ पखवाड़े के उपलक्ष्य में दिनांक 21.9.1994 को विभाग के अतकनीकी कर्मचारियों को केंद्र की विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियों से अवगत करने के लिए केंद्र के प्रशासनिक वर्ग एवं हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा ''प्रगत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भापअ केंद्र का योगदान'' विषय पर एक वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी के आरंभ में केंद्र के कार्मिक प्रभाग के अध्यक्ष श्री. सी. जी. सुकुमारन् ने संगोष्ठी में पधारे विशिष्ट अतिथियों एवं प्रतिभागियों का स्वागत करते हुए उनके समक्ष केंद्र में चल रही विभिन्न हिन्दी गतिविधियों की एक संक्षिप्त जानकारी उन्हें दी। इसके पश्चात् हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में भारत सरकार के गृह मंत्री माननीय श्री. शंकरराव चव्हाण द्वारा जारी एक संदेश उपस्थिति प्रतिभागियों के समक्ष पढ़ा गया और उन्हें अपने दैनिक व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करने का संकल्प भी कराया गया।

इस संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता केंन्द्र के हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के अध्यक्ष डा.बी.ए. दासण्णाचार्य ने की। डा.बी. के. साहा, संयुक्त सचिव (अनुसंधान एवं विकास) परमाणु ऊर्जा विभाग इस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। केंद्र के तकनीकी समान्वय एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण वर्ग के निदेशक डॉ. हीरालाल राजदान की एक वार्ता भी इस सत्र में रखी गई थी जिसका विषय था ''प्रौद्योगिकी हस्तांतरण''। इस अवसर पर अध्यक्ष के रूप में बोलते हुए डॉ. दासणाचार्य ने केंद्र की विभिन्न हिन्दी गतिविधियों पर प्रकाश डाला। प्रशासनिक कर्मचाचियों के लिए ऐसी संगोष्ठियों के आयोजन में केंद्र के कार्मिक प्रभाग की ओर से दिये जाने वाले सहयोग की उन्होंने सराहना की। डॉ. साहा ने इस बात पर बल दिया कि ऐसी संगोष्ठियों का आयोजन केंद्र से बाहर भी किया जाना चाहिए ताकि लोगों को केंद्र में किये जा रहे अनुसंधान कार्य व प्रौद्योगिकी के विकास से संबंधित गतिविधियों से, अवगत कराया जा सके। डा.राजदान ने अपनी वार्ता में यह बताया कि पहले हमारा ध्यान मुख्यतः प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान पर ही केंद्रित रहता था पर अब इस बात पर भी ध्यान दिया जा रहा है कि हम लोग जिन प्रौद्योगिकियों का विकास कर रहे हैं या जो अनुसंधान कार्य कर रहे हैं उसे कहां तक विभिन्न उद्योगों को उपयोग के लिए सौपा जा सकता है और जनोपयोगी बनाया जा सकता है। इस संगोष्ठी मे कुल 6 वार्ताएं, केंद्र के विभिन्न प्रभागों के वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत की गई जिसमें कंप्यूटर, विकिरण, लेसर, जल शुद्धिकरण, सुदूर अंतरिक्ष एवं आधुनिक नियंत्रण प्रणाली जैसे विषयों का समावेश था। इस संगोष्ठी में विभाग के लगभग 250 वरिष्ठ अधिकारियों तथा आमंत्रित प्रतिभागियों ने भाग लिया। सभी ने इस आयोजन की सराहाना की। इस संगोष्ठी के संयोजिक थे केंद्र की विकिरण धातुकी प्रभाग के वैज्ञानिक अधिकारी श्री. एस. मजुमदार।

प्रस्तुति : **काशी नाथ पाण्डेय**
सह-निदेशक (राभा),
भा.प.अ. केन्द्र बम्बई - 400 085

विज्ञान कविता

डार

ौन आज का सजग सन्तरी, कौन आज का पहरेदार?
द्व्य दृष्टि रखने वाला यह, विद्युत प्रहरी यंत्र रडार
डियो डिटेक्टिंग एण्ड रेंजिंग से ही बना इसका नाम,
935 में जन्मा, द्वितीय युद्ध में आया काम ।
'सर राबर्ट वाटसन'' माने जाते इसके अमर पिता,
या अंधियारा क्या उजियारा सबका रहता इसे पता
र गगन में उड़ते हो या सागर की लहरों में खोए
श्मन की हर चाल का यह, अपने पर्दे पर चित्र संजोए
स इतना ही नहीं और यह मौसम भी बतलाता है
र की वर्षा, आँधी का सन्देश भी लेकर आता है।
श्न यही, यह कैसे अपना कार्यक्रम करता है
ांचल में एक यंत्र छिपाए ''एलर्ट'' रहा करता है
नसे रेडियो तरंगें पहले पैदा करता है
न 'लहरों' को चाहे जिधर-उधर भेजा करता है ।
ण-क्षण रुक-रुक तरल तरंगें प्रसारित हो हो कर
पने पथ पर मिली वस्तुओं से लौटे टकराकर
ौटी हुई तरंगों से यंत्रों द्वारा पर्दे पर
स्तु चित्र अंकित करता है यह मौन गुप्तचर ।
द रहे, यह एक समय में एक कार्य ही करता है
ब यह - लहरें भेज रहा हो, ग्रहण नहीं करता है
ही यंत्र बंद रहते हैं, जब आयी प्रेषक की बारी
र इस तरह कार्य होते, दोनों बारी-बारी
न्तु शीघ्रता भी तो इसकी है अति विस्मयकारी।
गातार होती सी पड़ती इसकी क्रियायें सारी ।
ह रेडियों तरंगें इतनी तेजी से जाती है
गभग ढ़ाई सेकण्ड में चाँद भी छू आती है ।

अगर न होता पादप प्रजनन

अगर न होता पादप प्रजनन, तो हम सब क्या होते।
कितने बच्चे नंगे रहते कितने भूखे सोते ।
बौना गेहूं धान न होता और न होता बौना ज्वार ।
एक जगह दो कल्ले होते, दाना छोटा होता ।।
संकर मक्का, ज्वार न होता, संकर धान न होता ।
उपजाऊँ जातियाँ न होती, तो क्या किसान होता खुश ?
एक साल में दो-दो फसलें, तो क्या हम भी ले सकते थे?
बीज रहित फल कभी न मिलता, बिन पराग के फूल।
अवरोधी जातियाँ न मिलती, जिनकी गहरी भूल ।
लम्बा सूत कपास न मिलता, रस से भरा न गन्ना।
राजमा और मटर न मिलती, और न काबुली चना।।
सोयाबीन, ट्रिटकेल, चुकन्दर फिर हम कैसे बोते ।
इतने सारे जनन द्रव्य क्या पास हमारे होते ।।
रोग रहित किस्में न मिलती भरे तत्व के दाने ।
पादप उगम केन्द्रों से हम रह जाते अनजाने ।

शाह आलम सिद्दीकी
हाउस नं. 15, बिछिया रेल्वे कालोनी,
गोरखपुर - 273012 (उत्तर प्रदेश)

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

वार्षिक प्रतिवेदन - वर्ष 1993-94

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की कार्यकारिणी की ओर से वर्ष 1993-94 की गतिविधियों का ब्यौरा इस प्रकार है।

वैज्ञानिक का प्रकाशन

परिषद की प्रमुख गतिविधियों में त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' का प्रकाशन पूर्ववत् चला। इस वर्ष के भी चारों अंकों का प्रकाशन भापअ केंद्र के पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग के माध्यम से किया गया । 'वैज्ञानिक' के अप्रैल-जून 1993 (25:2) अंक में अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता के पुरस्कृत लेखों को संक्षिप्त रूप से संजोया गया । इसके सभी अंकों में लेख, टिप्पणियाँ, विज्ञान नाटक एवं कविताओं के साथ-साथ विज्ञान समाचार के अंतर्गत, भापअ केंद्र में विकसित तकनीकों एवं शोधों का भी उल्लेख रहा। संपादकीय के माध्यम से 'स्वदेशी तकनीक की आवश्यकता, प्रौद्योगिकी नीति में नया मोड़, हिन्दी में वैज्ञानिक संगोष्ठियां, इत्यादि महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार रखे गये। विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर कुल मिलाकर लगभग 40 लेख तथा 20 टिप्पणियां प्रकाशित की गयीं। जुलाई-सितंबर 1993 के अंक से 'वैज्ञानिक' में 1980के बाद छपे लेखों/ टिप्पणियों की अनुक्रमणिका को प्रकाशित करने का कार्य भी प्रारम्भ किया गया। 'वैज्ञानिक' प्रकाशन की समग्रता को देखते हुए कार्यकारिणी विशेष रूप से डॉ. एम.आर. बालकृष्णन, संपादन मंडल के (स्व.) डॉ. जनार्दन स्वरूप, डॉ. गोविन्द प्रसाद कोठियाल, डॉ. कैलाश चन्द्र भल्ला, डॉ. दुर्गा प्रसाद पाण्डेय एवं श्री हरिओम मित्तल तथा व्यवस्थापन मंडल के डॉ. अशोक कुमार सुरी, डॉ. शिव प्रकाश गर्ग, डॉ. जगदीश चंद्र मोंगा, श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, श्री. धनश्याम दास मित्तल, श्री ललित कुमार, श्री. रामनिवास आर्य, श्री. इन्द्र कुमार शर्मा, एवं श्री. दीप प्रकाश की आभारी है।

विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद मुख्य रूप से भापअ केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों के लिए 'विज्ञान पत्रिका' का त्रैमासिक प्रकाशन करती रही है। इसमें विज्ञान संबंधी, विशेषकर, परमाणु ऊर्जा से संबंधित विषयों पर विशेष लेख होते हैं। रेडियो आइसोटोपों का औषध विज्ञान में उपयोग व गैस-पाइप लाइन में रिसाव की जानकारी, ऊर्जा के विभिन्न रूप, द्रुत प्रजनक रिएक्टर, भारतीय उपग्रह इनसेट-2 बी, निर्लवणीकर पद्धति द्वारा पेयजल की प्राप्ति, उन्नत सौर सेल इत्यादि, इस वर्ष के कुछ मुख्य लेख रहे हैं। डॉ. शिवदुलारे प्रसाद अवस्थी इसके मुख्य संपादक हैं।

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता

हर वर्ष की तरह, इस वर्ष भी अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसके अंतर्गत देश के विभिन्न भागों से कुल 25 विज्ञान लेख प्राप्त हुए थे। इनमें से कुल 11 लेखों को पुरस्कृत किया गया जिनमें दो अहिन्दी-भाषी लेखक वर्ग के थे । इस वर्ष रु. 5100/- की धनराशि पुरस्कार के रूप में दी गई। इस लेख प्रतियोगिता के संयोजक श्री. आई. जी. शर्मा थे ।

वैज्ञानिक प्रश्नमंच

अणुशक्तिनगर स्थित परमाणु ऊर्जा केंद्रीय विद्यालयों के विद्यार्थियों हेतु वैज्ञानिक प्रश्नमंच का कार्यक्रम 10 दिसंबर, 1993 को आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में लगभग 500 विद्यार्थियों तथा 20 अध्यापकों ने दर्शकों के रूप में भाग लिया तथा दो-दो विद्यार्थियों की चार टीमों ने प्रतियोगियों के रूप में भाग लिया। कार्यक्रम में इस बार बजर राऊंड के प्रश्न भी सम्मिलित किए गए । कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ.बी.ए. दासण्णाचार्य, निदेशक ठोस अवस्था भौतिकी एवं वर्णक्रमदर्शिकी वर्ग, ने की तथा पुरस्कार वितरण श्री. अनिल काकोडकर, निदेशक, रिएक्टर अभिकल्पन एवं विकास वर्ग, के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। स्वागत भाषण डॉ.डी.डी. पूद, निदेशक रेडियो रसायनिकी एवं आइसोटोप वर्ग, तथा धन्यवाद ज्ञापन, डॉ. जगदीश मोंगा, परिषद सचिव ने किया । प्रश्नमंच के आयोजन में डॉ. विजय मनचंदा, श्री. वी.के. जैन, डॉ. एस.पी. गर्ग, डॉ.ए. रामास्वामी, डॉ. अशोक सूरी, डॉ. आप्टे, डॉ. केशव चंद्र तथा श्री चतुर्वेदी का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ ।

राजभाषा वार्ताएं

राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के संयुक्त तत्वावधान में हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार प्रसार हेतु प्रतिवर्ष राजभाषा वार्ताएं आयोजित की जाती हैं। इस वर्ष चार वार्ताओं का आयोजन किया गया ।

1. श्री. आई.सी. श्रीवास्तव, महाप्रबंधक, महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड, द्वारा 20 मई, 1993 को 'दूर संचार - असीम संभवनाएं' विषय पर वार्ता प्रस्तुत की गयी।
2. डॉ. रश्मि कपूर, पर्यावरण विशेषज्ञ, ने 11 अक्टूबर 1993 को 'भविष्य के लिए गंभीर चुनौतियाँ - पृथ्वी को बचाए रखने हेतु आयोजित पृथ्वी शिखर सम्मेलन के उपरान्त' विषय पर वार्ता दी ।
3. श्री. अशोक मेहता, निर्देशक फोटोग्राफी, ने 10 दिसंबर 1993 को 'फिल्में कैसे बनती हैं' विषय पर बहुत मनोरंजक वार्ता प्रस्तुत की ।
4. श्री. शैलेन्द्र मेहता, निदेशक, रिएक्टर वर्ग, ने 27 जनवरी, 1994 को भारत के 220 मेगावाट परमाणु बिजलीघरों की संरचना में सुरक्षा संबंधी प्रावधान और उनकी उपयोगिता विषय पर अपनी एक रोचक वार्ता प्रस्तुत की । इन कार्यक्रमों के संयोजक डॉ. राजेन्द्र स्वरूप थे ।

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

विज्ञान के क्षेत्र में दिए जाने वाले श्रेष्ठतम पुरस्कार (नोबेल पुरस्कार) विजेता वैज्ञानिकों तथा उनके कार्यों के बारे में जानकारी देने के उद्देश्य से हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एक अर्धदिवसीय सेमिनार का आयोजन करती है। इस वर्ष 1993 के भौतिकी, रसायनिकी तथा फीजिओलॉजी एवं मेडिसिन के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों के कार्यों पर प्रकाश डालने हेतु 13 जनवरी, 1994 को एक सेमिनार का आयोजन किया गया जसमें भापअ केंद्र के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने वार्ताएं दी। समारोह अध्यक्ष डॉ.डी.वी. गोपीनाथ, सलाहकार भापअ केंद्र ने राजभाषा हिन्दी में वार्ताओं के आयोजन की सराहना की तथा इन प्रयासों की आवश्यकता पर विशेष बल दिया क्योंकि ये भारतीय भाषाओं में विज्ञान को जन-सामान्य तक पहुंचाने एवं एक सहज वातावरण तैयार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस वर्ष निम्न वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार मिला तथा उनके कार्यों के बारे में चर्चा की गयी।

भौतिकी	**विषय**	**वक्ता**
प्रो. जोसेफ टेलर एवं प्रो. रसेल हल्स	बॉयनरी पल्सर	डॉ. बृजेश कुमार जैन नाभिकीय प्रभाग
रसायनिकी		
डॉ. कैरी मूलिस प्रो. माईकल स्मिथ	पौलीमरेज चेन रिएक्शन साईट डाएरेक्टेड म्यूटाजेनिसस	डॉ. अशोक कुमार आण्विक जीव विज्ञान एवं कृषि प्रभाग
फीजियोलॉजी एवं मेडिसन		
डॉ. रिचर्ड जे राबर्ट डॉ. फिलिप्स ए. शार्प	स्प्लिट जीन	डॉ. सुदेश कुमार महाजन अध्यक्ष, आण्विक जीव विज्ञान एवं कृषि प्रभाग

इस कार्यक्रम के संयोजक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल थे।

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की तकनीकी उपलब्धियां (कार्यशाला)

पिछले वर्षों की तरह इस वर्ष भी हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में 8 अक्तूबर 1993 की परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की तकनीकी उपलब्धियां विषय पर एक वैज्ञानिक कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला प्रशासनिक वर्ग के सहयोग से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों के लिए विशेष रूप से आयोजित की जाती है। यह इस तरह की चौथी कार्यशाला थी। इस कार्यशाला का उद्देश्य केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों को परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की विभिन्न तकनीकी उपलब्धियों के बारे में जानकारी देना था । इस कार्यशाला का उद्घाटन केंद्र के निदेशक डॉ. ए.एन. प्रसाद ने किया । इस कार्यशाला में केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा कुल सात पत्र पढ़े गये । इसमें विभाग के लगभग 350 पंजीकृत प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम के संयोजक डॉ. अशोक ताम्हणकर थे।

उच्चगति कम्प्यूटर - आधुनिक विज्ञान (संगोष्ठी)

वर्ष 1994 का शुभारम्भ हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा एक महत्वपूर्ण एवं सामयिक विषय पर आयोजित संगोष्ठी से हुआ । इस संगोष्ठी का विषय था 'उच्चगति कंप्यूटर आधुनिक विज्ञान का अभिन्न अंग' जो 3 जनवरी, 1994 को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में आयोजित की गयी। इसमें लगभग 300 पंजीकृत प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा आमंत्रित कंप्यूटर विशेषज्ञों ने उच्चगति कप्यूटर से संबंधित विभिन्न विषयों पर अपनी वार्ताएं प्रस्तुत कीं । उद्घाटन सत्र में श्री एच.सी. कौरा, अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रभाग, ने प्रतिभागियों का स्वागत किया । डॉ.बी.ए. दासण्णाचार्य, निदेशक, ठोस अवस्था भौतिकी एवं वर्णक्रमदर्शिकी वर्ग एवं अध्यक्ष, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, ने अपने प्रारम्भिक वक्तव्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में उच्चगति कंप्यूटर के उपयोग पर प्रकाश डाला। श्री. एस.के.मेहता निदेशक, रिएक्टर वर्ग, ने अपने उद्घाटन भाषण में भापअ केंद्र में कंप्यूटर की गतिविधियों तथा विकास पर प्रकाश डाला। डॉ.पी.वी.एस. राव, अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रणाली एवं संचार वर्ग, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान ने प्रमुख वार्ता प्रस्तुत की जिसमें कंप्यूटर के क्षेत्र में हुए विकास का तथा वर्तमान स्थिति का सरल भाषा में उल्लेख किया गया। आमंत्रित वार्ताओं में भापअ केंद्र, IISc. बंगलूर,

CDAC पुणे, ADA बंगलूर तथा NCST बंबई के वैज्ञानिकों ने उच्चगति कंप्यूटर के विभिन्न उपयोगों के बारे में वार्ताएं दी । श्रीमती रश्मि रस्तोगी इस कार्यक्रम की संयोजिका थी ।

'नाभिकीय ऊर्जा एवं स्वचालन' (संगोष्ठी)

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, नाभिकीय ऊर्जा से संबंधित विषयों पर सही एवं समुन्नित जानकारी को जन सामान्य तक पहुंचाने के उद्देश्य से, प्रतिवर्ष हिन्दी में एक संगोष्ठी का आयोजन करती हैं। इसी श्रृंखला के अंतर्गत, इस वर्ष 25-26 मार्च, 1994 को राजभाषा कार्यन्वयन समिति एवं नाभिकीय ईधन सम्मिश्र, हैदराबाद द्वारा संयुक्त रूप से एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था ''नाभिकीय ऊर्जा एवं स्वचालन'' । इसका उद्घाटन 25 मार्च 1994 को नाभिकीय ईधन सम्मिश्र, हैदराबाद, में डॉ. धरणी प्रसाद सिन्हा, यू.एन.डी.पी., विशेषज्ञ एवं पूर्व निदेशक - एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद द्वारा हुआ । इसकी अध्यक्षता श्री के.के. सिन्हा, मुख्य कार्यपालक, नाभिकीय ईधन सम्मिश्र एवं अध्यक्ष व प्रबंध निदेशक मिधानी ने की। इस अवसर पर श्री एस. के. शर्मा, सह निदेशक, रिएक्टर वर्ग, भापअ केंद्र तथा अध्यक्ष, राजभाषा कार्यन्वयन समिति भापअ केंद्र ने हिन्दी मे वैज्ञानिक साहित्य सृजन तथा वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार में परिषद के योगदान की सराहना की । इस संगोष्ठी को दो भागों में विभाजित किया गया । पहले दिन नाभिकीय ऊर्जा के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गयी। दूसरे दिन स्वचालन विषय पर वार्ताएं प्रस्तुत की गयी । स्वचालन में कंप्यूटरीकरण से हो रही प्रगति का उल्लेख किया गया । कार्यक्रम के अंत में एक पैनल चर्चा हुई जिसमें वैज्ञानिक शब्दावली को समृद्ध करने के लिए विशेष रूप से विचार-विमर्श हुआ । इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि कुल 22 वक्ताओं में से 15 वक्ता अहिन्दी भाषी क्षत्रों से थे तथा संपूर्ण कार्यक्रम का संचालन भी एक अहिन्दी भाषी अधिकारी श्री. आर.पी. शेट्टी, वरिष्ठ प्रबंधक (ना.ई.स.) ने किया । देश के विभिन्न भागों से लगभग 225 लोगों ने इस संगोष्ठी में भाग लिया। संगोष्ठी का समापन परिषद के संयुक्त सचिव, डॉ. विजय मननंदा द्वारा स्थानीय आयोजकों तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति आभार प्रदर्शन से हुआ । इस संगोष्ठी के संयोजक श्री. जी.एल. गोस्वामी भापअ केंद्र तथा स्थानीय संयोजक श्री. उमेश चन्द्र गुप्ता (नाईस) थे ।

भावी कार्यक्रम - 1994 - 1995

- अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता
- विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन
- वैज्ञानिक का प्रकाशन
- हिन्दी दिवस संगोष्ठी (21 सितंबर 1994) (प्रगत प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में भापअ केंद्र का योगदान)
- वैज्ञानिक प्रश्न मंच (नवंबर 1994)
- नोबेल पुरस्कार किसे और क्यों (दिसम्बर 1994)
- वैज्ञानिक संगोष्ठी - नाभिकीय ऊर्जा एवं पर्यावरण (फरवरी 1995) बंबई से बाहर
- वैज्ञानिक संगोष्ठी (जनवरी 1995) बंबई में
- राजभाषा वार्ताएं
- अणुशक्तिनगर में लोकप्रिय वैज्ञानिक विषयों पर वार्ताओं का आयोजन

- डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा
सचिव, हि. वि. सा. प.

संकलन

पिछले अंकों की अनुक्रमणिका (गतांक से आगे)

जनवरी-मार्च 1992 24(1)

संपादकीय 3

लेख

वेशरम (आईपोमिया कार्निया) द्वारा कागज निर्माण 5
- श्री. रुद्र नारायण शुक्ल

ज्यामितीय संस्कार 9
- श्री. गोविन्द प्रसाद शर्मा

कम्प्यूटर गणित में आंकडा प्रदर्शन 15
- श्री. श्याम लाल धीमान

बेर की बहु उपयोगी फसल 18
- डॉ. आर. के. जैन एवं आर. के चौधरी

भूकंप : एक विवेचन 21
- डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव

महारोग एड्स से बचाव 25
- डॉ. प्रेमचन्द्र स्वर्णकार

लू लगने के कारण और निवारण 28
- श्री. वीरेन्द्र शर्मा

कवकों की आर्थिकी 32
- श्री. विजय उमराव

एंटी-बायोतटिक्स 37
- श्री. सत्यदेव पाण्डेय

किसे हम जीवित कहें ? 40
- डॉ. विनोद कुमार गुप्त

ताप - विद्युत गृह हेतु जलधारा 43
- श्री. उदयवीर सिंह

भूत का रहस्य 48
- श्री. मेघराज मित्र और साथी

बाल विज्ञान 50

दूरदर्शन

टिप्पणियां

रान्यूए (आर.एन.ए.) आज का स्वविभाजन 52

सौर मंडल के अज्ञात ग्रह 54

प्रकृति की सुन्दर देन गुलाब 55

हिप्नोपीडिया यानि सोते-सोते पढ़िए 57

जैव नियंत्रण 58

खंडसारी उद्योग में खांड की प्राप्ति 59

जीवाणु खाद 60

क्या हिमालय उठ रहा है? 61

कुछ फूल कुछ कांटे 63

अप्रैल-जून 1992 24(2)

संपादकीय 3

लेख

आखिर पारकिन्सन रोग क्यों होता हैं ? 5
- सुभाष चन्द्र लखेड़ा

सौर ऊर्जा : भविष्य की आशा 10
- वासुदेव पालीवाल

विरल एवं उच्चतापसह धातु : एक अवलोकन 16
- अशोक कुमार सूरी

खनिज तेल मूल्यांकन एवं महत्व 22
- योगेन्द्र कुमार शर्मा

हृदय रोगों से बचाव में हमारे आहार और व्यवहार का योगदान 26
- त्रिभुवन नाथ उपाध्याय

रेडियोधर्मी खनिज और भूवैज्ञानिक काल निर्धारण 30
- डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

संगणक की अत्याधुनिक कार्यप्रणाली:यूनिक्स 34
- अशोक ल. खांडवे

आश्चर्य जनक भारतीय राज केंकड़ा और उसका अनोखा व्यवहार 37
- डॉ. अनिल चटर्जी

प्लास्टिक 41
- डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी

नीले गुलाब के विकास का वैज्ञानिक पृष्ठाधार 47
- डॉ. सुबोध कुमार दत्त एवं राकेश कुमार पाण्डेय
स्तंभ
बाल विज्ञान (विज्ञान नाटक)
हम और हमारा सौर मंडल 52
- डॉ. देवकी नन्दन
नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?
नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद तकनीक में अभिनव परिवर्तन 58
- प्रो. गिरजेश गोविल
विज्ञान समाचार
बी.ए.आर.सी.में 61
अन्य समाचार 62
कुछ फूल कुछ कांटे 36
टिप्पणी
नमक 63

जुलाई-सितम्बर 1992 24(3)

संपादकीय 3
संदेश : लालू प्रसाद, मुख्यमंत्री, बिहार 5
उद्घाटन भाषण : डा. आर. चिदंबरम् 6
भारतीय परमाणू उर्जा कार्यक्रम 8
- श्री. एस. एल. काटी
नाभिकीय रिएक्टर के अभिकल्पन के सिद्धांत 15
- श्री. अनिल काकोडकर
परमाणु बिजली घरों का प्रचालन 18
- श्री. बी. के. भसीन
अनुसंधान रिएक्टर एवं इनके उपयोग 20
- श्री. एस. के. शर्मा
नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम में द्रुत प्रजनक रिएक्टरों का महत्व 22
- श्री. आर. शंकर सिंह
रिएक्टर सुरक्षा एवं नियामक पहलू 24
- एस.डी. सोमण
जीवविज्ञान एवं कृषि में समस्थानिकों का प्रयोग 29
- श्री. एस. ई. पवार एवं डॉ. चित्तरंजन भाटिया
रेडियो सक्रिय समस्थानिकों के आयुर्विज्ञानीय अनुप्रयोग 33
- डॉ. एस.ए. शर्मा
भारत में यूरेनियम का सर्वेक्षण 35
- श्री. रवि कौल एवं श्री के.के. सिन्हा
यूरेनियम खनन तथा सान्द्र का उत्पादन 40
- श्री जे.एल. भसीन
नाभिकीय धात्विक ईंधन 48
- ए.के. सिन्हा, श्री. बी.के. शाह एवं आर. विजय राघवन
मृत्तिका ईंधन 51
- श्री. यू.सी. गुप्त
आवरण एवं संरचनात्मक पदार्थ 57
- श्री. एस.एल. मनन
भारी पानी की उपयोगिता एवं उत्पादन 58
- श्री. सु. शर्मा, श्री. स्वयं प्र. श्रीवास्तव एवं श्री. वि. खिलनानी
दीर्घ-आयु नाभिकीय प्रबंधन 64
- श्री मधुसूदन कुमरा
नाभिकीय खनिज एवं उत्खनन : बिहार के परिप्रेक्ष्य में 66
- प्रो. आर.पी. सिंह
नाभिकीय ऊर्जा के उपयोग 71
- डॉ. ए.के. पांडे
विभूषक पौधे एवं समस्थानिक 73
- श्री हीरामणि गुजरान एवं डा. सु.कु. दत्त
भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र समाचार 77
प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण
उद्योग में रेडियो-समस्थानिक 78
- श्री. ए.बी. मजली

अक्टूबर-दिसम्बर 1992 24(4)

संपादकीय 3

भूकंप-विज्ञान : एक परिचय 4
- बालकृष्ण रस्तोगी

उत्तरकाशी भूकंप विवरण 8
- विष्णु प्रसाद काम्बले

भौमिकी 11
- सु.कुमार, अ.कु. मुण्डेपी, अ.कु. महाजन, ह.च. पाण्डेय एवं लो.वशिष्ठ

आवास गृह 13
- आनन्द स्वरूप आर्य

परिचर्चा 14
- प्रमोद नारायण अग्रवाल

भूकंप पूर्वकथन 19
- अरुण बापट

भूकंप-विज्ञान में प्रगति 21
- हर्ष के. गुप्ता

भूकंपीय इतिहास 22
- वाय.एस. भदौरिया, ए.जी.वी. प्रसाद एवं सी.ए. कृष्णन

भूकंप मापन क्रियाविधि एवं विकास 24
- वि. कुमार, अ.कृ. अग्रवाल एवं यो.सि. भदौरिया

भूकंप जोखिम 26
- रामदत्त शर्मा

भूकंपीय स्रोतों का अभिज्ञान 29
- फाल्गुनी राय

जलाशय भूकंपनीयता का नया माडेल 30
- हरि नारायण श्रीवास्तर

जलाशय प्रेरित भूकंपनीयता 35
- भूपेश कुमार गंगराडे

खान सुरक्षा में भूकंप विज्ञान की उपादेयता 42
- प्रकाश चन्द्र झा एवं एन.एम. राजू

भूकंप प्रतिरोधी संरचनाएं 47
- अ.स. वारुडकर

नाभिकीय बिजलीघरों का भूकंप 49
प्रतिरोधी अभिकल्पन
- अनिल काकोडकर एवं राधेश्याम सोनी

भा.प.अ. केंद्र में भूकंप-विज्ञान के 54
क्षेत्र में अनुसन्धान एवं विकास
- सनत कुमार अरोरा

भा.प.अ. केन्द्र समाचार 56

कुछ फूल कुछ कांटे 58

प्रतियोगिता परिणाम 60

भूकंप-विज्ञान शब्दावली 61

जनवरी-मार्च 1993 25(1)

रजत जयंती विशेषांक

संपादकीय 5

संगोष्ठी परिचय एवं समितियां 7

आयोजक संस्थाओं का परिचय

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद 11

न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन 14

इन्डियन रेयर अर्थ्स 16

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई: एक परिचय 18

परिषद के पच्चीस वर्षों के इतिहास से

कार्यकारिणी 24

''वैज्ञानिक'' विशेषांक 27

आयोजित संगोष्ठियां-सेमिनार 28

''वैज्ञानिक'' संपादन मडल 29

''वैज्ञानिक'' व्यवस्थापन मंडल 30

लेख-सारांश

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र : 31
प्रोद्योगिकी हस्तान्तरण
- डॉ. आर. चिदम्बरम्

कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान एवं क्रांति 35
- प्रो. वीरेन्द्र लाल चोपड़ा

विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन एवं अनुप्रयोग 39
- आर. जी. देशपांडे एवं डॉ. जी. शर्मा
प्रतिरक्षा मिसाइल कार्यक्रम 46
- बी. जे. सुन्दरम
अंतरिक्ष उपयोग कार्यक्रम 50
- प्रमोद काले
न्यूक्लिअर पावर परियोजनाओं के लिए समाकलित प्रबंधन प्रणाली 55
- के. एस. चोपडा
परमाणु बिजली घर-पुरानी, वर्तमान और भावी परियोजनायें 69
- जी. आर. श्रीनिवास
नाभिकीय ऊर्जा एवं लोक जानकारी 87
- बी.एन. जयराम एवं एन के अग्रवाल
पारंपारिक ऊर्जा स्रोत 92
- मोहन लाल शिशू
उर्जा संयंत्रों में सुरक्षा 94
- सुधाकर सोमण
औद्योगिकरण एवं पर्यावरण संरक्षण 100
- जय शंकर पाण्डेय एवं
प्रो. पुरुषोत्तम खन्ना
जैव प्रौद्योगिकी द्वारा पशुधन संवर्धन 104
- डॉ. एम.एल. मदन
भारतीय समुद्र विज्ञान में आधुनिक अनुसंधान एवं विकास 109
- डॉ. बी.एन. देसाई एवं राम भार्गव
भारत में लौह एवं प्रोद्योगिकी का विकास : सफलता के पथ पर 114
- डॉ. शैवाल कांति गुप्त एवं
डॉ. लोकेश कुमार सिंहल
फसलों की विकास - प्रक्रिया 124
- राजनारायण पाण्डेय और
डॉ. चित्तरंजन भाटिया
भापअ केन्द्र में सुपर कम्प्यूटर क्षेत्र में विकास 129
- हरीश कुमार कौरा
भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन में उपग्रह प्रमोचन वाहनों का विकास 131
- डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्ता
आयुर्वेद : सिद्धांत एवं अनुप्रयोग 132
- डॉ. डी.एस. अन्तुरकर
प्रौद्योगिकी विकास एवं सी. एस. आई. आर. 133
खनिज तेल अन्वेषण 134
- डॉ. एस के बिश्वास
इंसैट - 2 का अंतरिक्ष खण्ड 135
संरूपण और डिजाइन : एक उदाहरण
- डॉ. पी. रामचन्द्रन
हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की वार्षिक रिपोर्ट (1991-92) 137
पुस्तक समीक्षा 141
संगोष्ठी समाचार 142
कुछ फूल : कुछ कांटे 143

अप्रैल-जून 1993 25(2)

संपादकीय 3
अंतरिक्ष की ऊष्मीय अभिकल्पना 5
- डॉ. आनन्द कुमार शर्मा एवं
प्रो. अनंत वि. पत्की
कैंसर क्यों होता है ? 11
- डॉ. रमेश सोमवंशी
समुद्री प्रदूषण निवारण में तेलभक्षी जीवाणु 17
- डॉ. राजनारायण पांडण्ये
तंत्रिका शल्य विज्ञान : ज्ञान तंतुओं पर नियंत्रण 21
- डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव
स्टेनलेस इस्पात प्रकार एवं उपयोग 24
- डॉ. अरविन्द कुमार गुप्ता एवं अनूप कुमार

कागज़ उद्योग के जल-प्रदूषण का अध्ययन 31
- डॉ. आर.एन. शुक्ला
उड़न राख एवं पर्यावरण 35
- डॉ. घनश्याम गुप्ता, भानुप्रकाश एवं रवि प्रकाश
विकिरणशील समस्थानिकों की उपायदेयता 39
- (कु) पूजा तिवारी
विलायक डि-एस्फालिंग तकनीक 43
- डॉ. जी.एस. डंग
नोबेल पुरस्कार किसे और क्यों 46
- डॉ. रजनी कांत चौधरी
रासायनिक संयोग विज्ञान 48
- डॉ. अर्जुन दास
कुवर्ण से वाष्प निक्षेपण द्वारा सुवर्ण 50
- के.के. सिन्हा
भा.प.अ. केन्द्र समाचार 53
टिप्पणियां
लिथोट्रिप्सी 54
विश्व का सबसे मीठा पदार्थ 55
स्वास्थ के लिए हानिकारक एल्युमिनियम 55
बायोटेक टमाटर 57
चुंबक चिकित्सा 58
मधुमेह और मेथी के बीज 59
गर्भावस्था में गाय-भैंस की देखभाल 59
बाल विज्ञान
अद्भुत मछलियाँ 61

जुलाई-सितम्बर 1993 25 (3)

संपादकीय 3
लेख
लेसर प्रेरित संलयन : भविष्य का ऊर्जा स्रोत 5
- जगदीश चन्द्र मोंगा
कम्प्यूटर की सहायता से भारतीय भाषाओं में अधिगम शिक्षण 10
- डॉ. रेखा गोविल
किशोर अवस्था की आवश्यकताएं एवं समस्याएं 23
- श्रीमती कालिन्दी मजुमदार
कैसी है शोर की विडम्बना 27
- डॉ. डी. डी. ओझा
इलेक्ट्रॉन अंतरण अभिक्रियाएं 30
- डॉ. अविनाश सप्रे
जीवन क्रियाओं का नियंत्रण : विपर्यायी प्रोटीन फासफोरिलेशन 34
- डॉ. श्रीकुमार आपटे
टिप्पणियां 38
गुत्थी सिरदर्द की
- नरविजय सिंह यादव
विडियो कैमरा - एक अवलोकन
- डॉ. बालगोविन्द जायसवाल
पर्वतों को जड़े होती है ?
- डॉ. रामकृष्ण चौधरी
मीथेन और ग्रीन हाऊस प्रभाव
- डॉ. गोपाल भारद्वाज
बाल विज्ञान (विज्ञान नाटक) 45
परमाणु की आंतरिक दुनिया
- डॉ. सत्य नारायण त्रिपाठी
विज्ञान समाचार 51
भापअ केन्द्र में
अन्य समाचार
संगोष्ठी समाचार 53
मानव स्थास्थ के कुछ आयाम
पशु-चिकित्सा विज्ञान की प्रगति में मुक्तेश्वर परिसर का योगदान
कुछ फूल : कुछ कांटे 54
संकलन
''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित लेखों की अनुक्रमणिका 56
अन्य :
समीक्षा 60
विज्ञान कविता

दी विज्ञान साहित्य परिषद की कार्यकारिणी मिति का चुनाव परिणाम

क्तूबर-दिसम्बर 1993 25 (4)

ादकीय 3

ख

न्क्रोट्रान विकिरण :
क विलक्षण प्रकाश स्रोत 5
ए.पी. मिश्र

मसो मा ज्योतिर्गमय : प्रकाश का 8
ानिक सफर
राजेन्द्र कुमार राय

ों के उपचार में भारतीय वनस्पति 11
रत्नेश निगम

ग्रह संचार : एक क्रान्तिकारी खोज 14
गणेश कुमार पाठक

द्युत अवरोध आयतन लेखिका : रक्त 20
ाह मापन
घनश्याम दास जिन्दल

र यौवन का रहस्य : रक्त का नियंत्रित 24
ई दाब
डॉ. केशव कुमार

ीन और उसकी उपयोगिता 28
प्रो. सीताराम सिंह 'पंकज'

र्बोहाइड्रेट्स और हमारा भोजन 31
बालकृष्ण काबरा 'एतेश'

ख रंजक : प्रकृति की एक अनमोल देन 34
डॉ. अजित कुमार सेन

ारिया नियंत्रण और मछलियों की भूमिका 37
डॉ. मनमहोन प्रकाश

ोगैस एक अक्षय ऊर्जा स्रोत 42
अमरिक सिंह एवं अनिल कुमार सक्सेना

ल विज्ञान

बर्फ के पिघलने पर क्या पानी का 46
तल अपरिवर्तित रहता है ?

एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उडेलने 47
पर दूध ठंडा क्यों हो जाता है?

टिप्पणियां

पोस्टाग्लैन्डिन 48

क्या सूर्य निस्तेज हो रहा है? 50

कैंसर के इलाज में 51

जीवाणु और विषाणु बम 53

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केन्द्र में 54

अन्य समाचार 55

कुछ फूल कुछ कांटे 59

विज्ञान कविता 59

वार्षिक प्रतिवेदन 60

पिछले अंकों की अनुक्रमणिका 64

(पृष्ठ 47 का शेष भाग)

इन कार्यों में इतना परिष्करण आ गया है कि जापान में एक ऐसा रोबोट जिसे सुशम रोबोट का नाम दिया गया अभी हाल (नवम्बर 1994) में ही दूरदर्शन से प्रदर्शित किया गया था। इसमें यह दर्शाया गया था कि यह एक घन सेमी. आयतन वाला छोटा सा रोबोट किस प्रकार मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर खून साफ करने का कार्य कर सकता है। ऐसे छोटे रोबोट आंख और मस्तिष्क के आपरेशन में भी प्रयुक्त होते हैं। आधुनिक रोबोट सुदूर संचालित किए जा सकते हैं। इस दिशा में हो रही निरंतर प्रगति क्या क्या और नये स्वरूप रोबोटिकी को देने में सक्षम होगी भविष्य ही बताएगा। रोबोटिकी के क्षेत्र में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र का प्रसंशनीय योगदान रहा है।

एम.एस. रामकुमार
निदेशक, नाभिकीय ईधन वर्ग,
तथा **रमेश कुमार मोदी**
सुदूर हस्तन एवं रोबोटिकी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र
बम्बई 400085

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) का परिणा

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र द्वारा आयोजि अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु 53 लेख प्राप्त हुए । परिणाम इस प्रकार है :

पुरस्कार	विजेता का नाम	पता	विषय
प्रथम (रु. 1500/-)	**विनीता सिंघल**	सी 4 जी/103 ए, जनक पुरी, नई दिल्ली-110 058	"एड्स : कैसे मिलेगा छुटकारा
द्वितीय (रु. 1000/-)	**कु. अर्चना** वैज्ञानिक	आनुवंशिकी विभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)-132 001	"डी.एन.ए.फिंगरप्रिंटिंग: एक अनूठी विधि अनुप्रयोग"
तृतीय (रु. 500/-)	**डॉ. ए.के. शर्मा** प्रधान, ऊ.प्र.अ. एवं **प्रो. ए.वी. पत्की** उपनिदेशक यांत्रिक क्षेत्र	इसरो उपग्रह केन्द्र, अन्तरिक्ष विभाग, हवाई पत्तन मार्ग, विमानपुरा डाकघर, बेंगलूर-560 017	"ईंधन सेलें"
प्रोत्साहन (रु. 300/-) प्रत्येक	1. **डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा** वैज्ञानिक 'ई'	रक्षा धातुकर्मिक अनुसंधान प्रयोगशाला, कन्चन बाग डाकघर, हैदराबाद-500 258	"सूक्ष्म कणीय इन्वैस्टमैंट कास्टिंग-एक अभिनव धातु कार्मिक तकनीक"
	2. **डॉ. अतुल कुमार सामन्त** वरिष्ठ रसायनज्ञ	अभियांत्रिकी एवं समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान तेल एवं प्राकृतिक गैस कार्पोरेशन लि., पनवेल-410 221	"खनिज तेल उत्पादन में सूक्ष् जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न संक्षारण की समस्या"
	3. **श्री. श्यामलाल धीमान** प्रवक्ता भौतिकी	द्वारा डॉ. भोलासिंह रावत, राजकीय चिकित्सालय के पीछे, कोटद्वार (गढवाल)-246 149	"अति चालकता"
	4. **डॉ. मदन लाल**	नाभिकीय भौतिकी प्रभाग भा.प.अ.के., बंबई-400 085	"ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण
	5. **श्री. महेन्द्रकर, हनुमन्तराव, रघु माथुर एवं दिलशाद अख्तर**	रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला, कन्चन बाग डाकघर, हैदराबाद-500 258	"स्थायी चुंबकीय पदार्थ : आधुनिक विकास"

हिन्दी भाषी 1. **श्री.यू.एस. भट्टाचार्य** 20ए, राजेन्द्र लाल मार्ग, "सौर्यशक्ति"
रु. 300/-) कलकत्ता-700 006
प्रत्येक

2. **श्रीमती शोभा नाखरे** 42, श्री कृष्णनगर, "मातृत्व व कृत्रिम गर्भधारणा"
बोरीवली (पूर्व) बंबई-400 066

ः : प्रतियोगिता हेतु, प्राप्त लेखों में से कई अन्य लेख "वैज्ञानिक" में प्रकाशन योग्य पाये गये। इनके ध में लेखकों को अलग से जानकारी भेज दी जाएगी । निवेदन है कि कहीं और भेजने से पूर्व संपादक अपने लेख की स्थिति जान लें ।

ुछ फूल : कुछ कांटे

मैं नियमित "वैज्ञानिक" पत्रिका प्राप्त कर हूँ । पत्रिका बहुत ही उपयोगी है । सदस्यगण पढ़कर बहुत लाभ उठा रहे हैं । जनवरी-मार्च 94 का अंक प्राप्त कर लिया है ।

9-94 **रामेन्द्र सिंह**
पुस्तकाध्यक्ष, सर्व हितैसी पुस्तकालय
ग्राम. पो. तेलमर, नालन्दा-803 204

पिछले दिनों शिमला में "विज्ञान लेखन कारिता" विषय पर कार्यशाला के दौरान मुझे ज्ञानिक" पत्रिका की जानकारी मिली । आपके ाल संपादन में प्रकाशित इस पत्रिका का लाभ ाकर मैं अपने लेखन में विज्ञान को जोड़कर जन ान्य तक उसे पहुंचाना चाहता हूं। कृपया उचित मर्श दें ।

-10-94 **प्रकाश चन्द्र भारद्वाज**
पत्रकार छात्र, हिमाचल विश्वविद्यालय
आदर्शभवन ढ़ाडा, टुटू, शिमला.

ज्ञानिक' पत्रिका के आजीवन सदस्य बनकर इस का में दी गयी जानकारी का लाभ उठाएं । जन ान्य तक विज्ञान साहित्य पंहुचाने के पुन्य कार्य शुभ कामनाएं (सं.)

मुझे सतत प्रयत्न के बाद "वैज्ञानिक" का अप्रैल-जून 94-(26:2) प्राप्त हुआ । पढ कर खुश हो उठा । अगले अंक शीघ्र मिलेंगे इसकी आशा करता हूँ ।

16-11-94 **राजेन्द्र प्रसाद**
फ्रेन्डस कॉलोनी,
मधुबनी (बिहार)

(किन्ही अपरिहार्य कारणों से पिछले वर्ष से अंक प्रकाशन में विलम्ब चल रहा है । देरी के लिए हमें खेद हैं । (सं.)

मैनै 'वैज्ञानिक' पत्रिका पढ़ी, बहुत अच्छी लगी । कृपया मुझे और मेरे साथियों को इसके बारे में अधिक जानकारी दें ।

20-11-94 **प्रवीण कुमार चौधरी**
द्वारा- ममता क्लिनिक
श्रीराम मन्दिर के सामने, सरदार शहर,
जिला-चुरु 331 403 (राज.)

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉबे में स्थापित की गयी है। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियोआइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रुप से विकास किया है एवं देश विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं प्रदत्त सेवाएं इस प्रकार हैं:

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचो तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई.सैट, वी.कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रुई, शल्य ब्लेड, दस्ताने, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया, अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रोद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि.ना.पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.

टेलीफोन : 555 16 76/555 31 45

तार : ब्रिटएटम, बम्बई-94. टेलेक्स : 11 72212 ब्रिट इन्

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छटी मंजिल, 111, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई - 400 020 (भारत)

फोन : 290 914 -15 टेलेक्स : 011 - 83122

तार : रेअर अर्थ बंबई

: हमारे उत्पादन :

इलमेनाइट
रुटाइल
जरकान
जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)
जिरकोनियम ऑक्साइड
जिरकोनियम आक्सीक्लोराइड
गारनेट
सिलिमेनाइट
मोनाजाइट

रेअर अर्थ्स क्लोराइड
रेअर अर्थ्स फ्लोराइड
रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस
सीरियम ऑक्साइड
सीरियम हाइड्रेट
सीरियम कार्बोनेट
ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइट्रेड)
समेरियम/इट्रियम/गैडोलिनियम सांद्र

थोरियम/सीरियम नाइट्रेट - थोरियम ऑक्साइड
एवं
कृत्रिम रुटाइल

CHOUDHARY BROS.

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा
डॉ. अशोक कुमार सूरी द्वारा गुड्डी प्रिंटर्स मुलुंड, फोन : 5680589/5321149 बम्बई में मुद्रित व प्रकाशित

NUCLEAR GRADE MATERIALS FOR COMMERCIAL APPLICATION

The accuracy, quality and reliability of nuclear grade pipes and tubes - in seamless tubes o different grades S.S. and alloy steels as per ASTM A 312/213/269, for chemical, nuclear, fertilizer petrochemical and power generation industries.

Ultra pure materials - Like Selenium Antimony, Bismuth Gallium, Zirconium $POCl_3$ and other electronic grade materials upto 99.9999 purity.

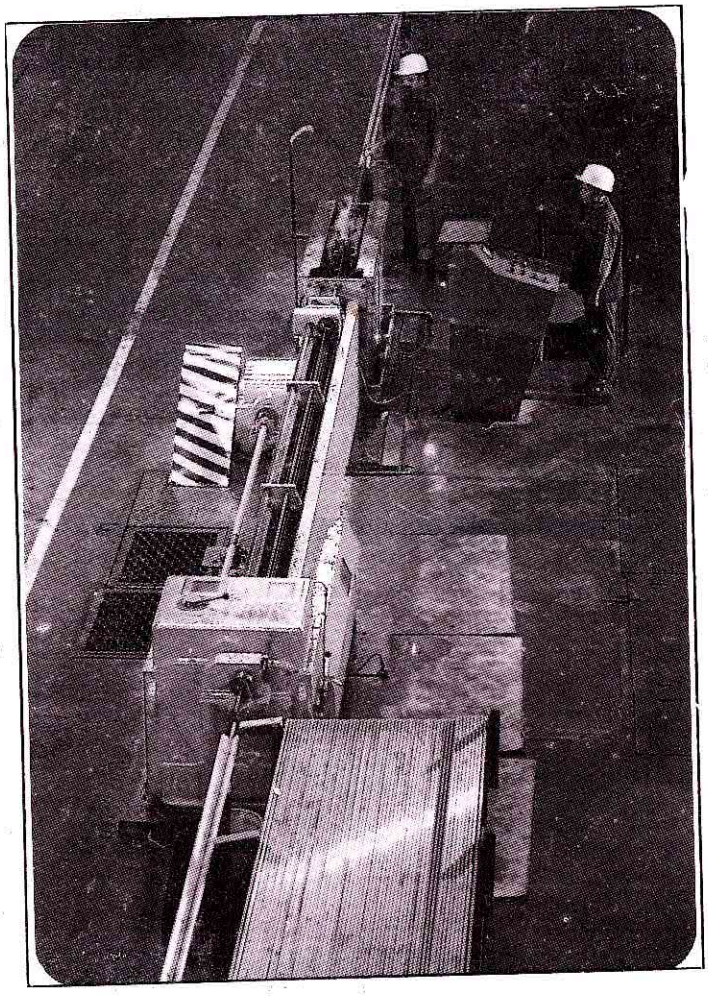

Job Work - For ho extrusion, cold palgering and vacuum or hydroge annealing of bearing or carbon steel cupronickel titanium or othe tubes, plasma, Ar melting of specia metals.

The 8-15 cold rolling or pilger mill, built at Nuclear Fuel Complex, available for sale to Indian Industries.

For your special material requirements, please contact...

Marketing Manager

NUCLEAR FUEL COMPLEX

ECIL POST, HYDERABAD - 500 762

Tel. No. 040 - 621239. Fax No. 040 - 621305